ISSN: 3049-2211

कृषक मंच

मासिक कृषि पत्रिका

खंड-2 अंक- 9, सितम्बर- 2026

Krishakmanch.com

कृषक मंच

मासिक कृषि पत्रिका

ISSN: 3049-2211

सम्पादक मंडल

डा. देवराज सिंह

मुख्य सम्पादक
सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष
सब्जी विज्ञान विभाग
कृषि विज्ञान विभाग, इनवर्टिस विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

प्रिया पाण्डेय

सहायक मुख्य सम्पादक
शोधार्थी
ए.के.एस. विश्वविद्यालय, सतना (म.प्र.)।

सहायक सम्पादक

डा. विक्रमा प्रसाद पाण्डेय
पूर्व अधिष्ठाता (उद्यान महाविद्यालय)
आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)।

डा. अरविन्द कुमार चौरसिया
सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग (मेघालय)।

डा. महेन्द्र कुमार यादव
सहायक प्राध्यापक (सब्जी विज्ञान)
आर.एन.बी. ग्लोबल विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)।

डा. वर्तिका सिंह
सहायक प्राध्यापक (फल विज्ञान)
आई.टी.एम. विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)।

डा. सचि गुप्ता
सहायक प्राध्यापक (पुष्प विज्ञान)
आ. न. दे. कृ. एवं प्रौ. वि.वि., कुमारगंज, अयोध्या (उ.प्र.)।

डा. रविकेश कुमार पाल
सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
रामा विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)।

डा. सरिता
सहायक प्राध्यापक (पौध रोग विज्ञान)
आर.एन.बी. ग्लोबल विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)।

डा. रविशंकर
सहायक प्राध्यापक (कीट विज्ञान)
स.व.भा.प.कृ. एवं प्रौ. वि.वि., मेरठ (उ.प्र.)।

डा. देवेश तिवारी
सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, तूरा कैंपस (मेघालय)।

डा. कुमार अंशुमान
सहायक प्राध्यापक (मृदा विज्ञान)
के.एन.आई.पी.एस.एस., सुल्तानपुर (उ.प्र.)।

डा. मंजीत कुमार
सहायक प्राध्यापक
लिंगायस विद्यापीठ, फरीदाबाद, हरियाणा।

डा. विवेक पाण्डेय
सहायक प्राध्यापक (सस्य विज्ञान)
इनवर्टिस विश्वविद्यालय, बरेली (उ.प्र.)।

डा. कल्याण सिंह
सहायक प्राध्यापक (उद्यान विज्ञान)/स्वतंत्र लेखक
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (उ.प्र.)।

डा. शिवशंकर पटेल
शोधार्थी (पौध रोग विज्ञान)
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र.)।

ISSN: 3049-2211

विषय वस्तु

क्र.सं.	विवरण	पृष्ठ सं.
1	मखाना: एक परिचय	4-6
2	भारत में e-NAM का प्रदर्शन, वर्तमान स्थिति एवं भविष्य की संभावनाएँ	7-8
3	एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन द्वारा फसल उत्पादकता में वृद्धि	9-13
4	सुपरफूड मखाना: सेहत और स्वाद का परफेक्ट कॉम्बिनेशन	14-15
5	मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना और संतुलित उर्वरक उपयोग	16-20
6	सटीक कृषि एवं ड्रोन तकनीक का उपयोग	21-25
7	मधुबनी: मखाना की मातृभूमि	26-29
8	औषधीय एवं सुगंधित पौधों की व्यावसायिक खेती	30-34
9	मृदा स्वास्थ्य कार्ड: मृदा परीक्षण से संतुलित पोषण एवं बेहतर फसल उत्पादन की ओर	35-37
10	संरक्षण कृषि का मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव	38-41
11	जलवायु-स्मार्ट कृषि के लिए फसल सुधार में आधुनिक पादप प्रजनन तकनीकों की भूमिका	42-47
12	कृषि नवाचार के विसरण एंव अंगीकरण में हिंदी भाषा की भूमिका	48-50
13	जलवायु परिवर्तन का कृषि एवं मृदा उर्वरता पर प्रभाव	51-55
14	अगस्त में सब्जियों की नर्सरी प्रबंधन एवं रबी फसलों की पूर्व तैयारी	56-58
15	दलहनी फसलों में जैव उर्वरकों की भूमिका और महत्व	59-62
16	ग्रीन जीडीपी: भारत में सतत विकास और हरित अर्थव्यवस्था की दिशा में एक पहल	63-65
17	कृषि में भू-स्थानिक प्रौद्योगिकी: प्रगति और अनुप्रयोग	66-67

मखानाः एक परिचय

डा॰ सुनील कुमार मंडल
सहायक प्राध्यापक
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, झंझारपुर (डा॰ राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार)

मखाना को हिन्दी में मुख्य रूप से मखाना या फूल मखाना कहा जाता है। यह एक पौष्टिक ''सुपर फूड'' है, जिसे अंग्रेजी में फॉक्स नट या लोटस के नाम से भी जाना जाता है।

मखाने के अन्य नाम

वैज्ञानिक नाम : *यूरेल फेराक्स सेलिस्व*

अन्य नाम : कमल के बीज या गारगोन नट

सामान्य विशेषताएँ

यह बिहार में पैदा होने वाला एक जलीय पौधा है, जो अपनी भरपुर पोष्टिकता के कारण सुपरफुड माना जाता है। यह पौष्टिक नास्ता (स्नैक) रूप में बहुत प्रसिद्ध है और इसे भूनकर खाया जाता है।

आनुवांशिक विशेषताएँ

मखाना का फूल बड़ा, बैंगनी रंग का उभयलिंगी होता है। मखाना पूर्णतः स्वपरागित पौधा होता है, जिसके फूलों में निषेचन की क्रिया बहुत पहले ही पानी की सतह के अन्दर हो जाता है। मखाना में सिर्फ एक ही वंश पाया जाता है। इसलिए इसमें आनुवांशिक विविता कम होती है। अनुवांशिक विविधता की कमी के कारण इसमें अब तक सुधार नहीं हो पाया है। इन उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर मखाना अनुसंधान संस्थान, दरभंगा के द्वारा आनुवांशिक विविधता को जानने के लिए बिहार और मणिपुर राज्यों के विभिन्न स्थानों से प्राप्त 36 जननद्रव्य का अध्यन किया गया और विभिन्न प्रकार के मात्रात्मक गुणों की पहचान की गयी जो इस प्रकार है:

क्र.सं.	मात्रात्मक गुण	अवधि/संख्या/मात्रा
1	बीज कोट का रंग	काला
2	अंकुरण की अवधि	28 से 35 दिन
3	फूलों की खिलने के आरम्भ होने की अवधि	112 से 126 दिन
4	फल फटने की अवधि	146-156 दिन
5	प्रति पौधों में लगे फलों की संख्या	8-15
6	फल का व्यास	4 से 8 ईंच
7	प्रतिफल में बीजों की संख्या	20 से 200
8	प्रति फल प्राप्त बीजों का वजन	15 से 150 ग्राम
9	बीजों का व्यास	0.4 से 1.5 सेंटीमीटर
10	100 बीजों का वजन	40 से 130 ग्राम
11	प्रति पौधे से प्राप्त बीजों का वजन	150 से 1600 ग्राम

प्रजनन प्रक्रियायें

मखाना की कलियों के विशेष गुणों के कारण इसमें पारंपरिक तरीकों से कृत्रिम संकरण कराना संभव नहीं है। अतः मखाना में अनुवांशिक सुधार कृत्रिम चयन के द्वारा ही संभव है। इन तथ्यों को ध्यान

में रखकर मखाना की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए विशुद्ध वंशक्रम के चन का सहारा लिया जा रहा है तथा बहुत से उन्नत वंशक्रम जैसे सेल-1, सेल-5, सेल-13 और सेल-14 का विकास एवं पहचान मखाना अनुसंधान केन्द्र, दरभंगा के द्वारा की गयी है।

मखाना की किस्में

मखाना मुख्यतः से पिछले कई दशकों से स्थानीय किसमों के साथ उगाया जाता है। इसलिए मखाना के वाणिज्यिक महत्व को देखते हुए मखाना अनुसंधान केन्द्र, दरभंगा ने ''स्वर्ण वैदही'' के नाम से मखाना की पहली नयी किस्म विकसित की है। इस किस्म में कीटों एवं बीमारियों से बचने के लिए उच्च प्रतिरोध की क्षमता है तथा अच्छी उपज के साथ-साथ जलवायु अनुकूल भी है।

स्वर्ण वैदही किस्म की विशेषतायें

बीज के गुणों की पहचान

1. बीज कोट का रंग	- गहरा काला
2. बीज का आकार	- गोलाकार
3. 100 बीज का भार	- 92 - 98 ग्राम
4. बीज का व्यास	- 9.2 - 10.2 मिलीमीटर

उपज का दृष्टिकोण

1. बीज प्रति पौधा	- 750 - 980 ग्राम
2. बीज प्रति हेक्टेयर उत्पादन	- 28 - 30 क्विंटल

पॉप (लावा) मखाना के गुणवत्ता की पहचान

1. आकृति	- चपटा
2. माप	- 2.0 - 2.5 सेंटीमीटर
3. रंग	- चमकीले सफेद

वनस्पतिक विशेषताएँ

मखाना को वार्षिक जलीय पौधे के रूप में वर्गीकृत किया गया है, जिसके विशाल प्लावित पत्तियां मोनोटाईप जीनस के मैक्रोफाइटस होते है जो बाढ़ वाले क्षेत्रों के निचले हिस्से में स्थिर, उथले पानी (4 से 6 फीट) मे होते हैं। मखाना का वानस्पतिक विवरण निम्नलिखित है:

विस्तार: मखाना बीज से उत्पन्न होने वाला पौधा है, जिसके नये पौधे पूर्ण रूप से विकसित बीज से निकलते हैं।

बीज: मखाना बीज का अंकुरण हाइपोजियल प्रकार का हैं। अंकुरण के समय मखाना बीज का बीजपत्र एवं अधोबीजपत्री मिट्टी में रहता है।

जड़े: मखाना की जड़े गुच्छों के रूप में होती हैं। जड़े मौटी, लम्बी (40 से 125 सेंटीमीटर) गुदेदार एवं रेशेदार होती है, जिनमें अनेक वायुपेटी भी होती है। प्रत्येक पौधे में करीब 3 से 5 जड़ों के गुच्छ होते हैं तथा प्रत्येक गुच्छ 10 से 15 छोटी जड़ों से बने होते हैं।

तना: मखाना के पौधों में राइजोमेटस तना होता है। इसका राइजोम छोटा, मोटा एवं खड़ा होता है, जबकि पर्णकली उपर की ओर मुड़ी होती है।

पत्तियाँ: मखाना की पत्तियां एकान्तर (अल्टरनेट), गोल, लम्बे (1 से 2 मीटर) तथा प्लावित प्रकृति के होते हैं। पत्तियां 3 से 5 फीट लम्बे डण्ठल पर लगी होती है। पत्तियों का उपरी सतह हरे रंग का तथा भीतरी सतह गहरे बेंगनी रंग का होता है। इसकी दोनों सतह असंख्य का ॅटो से भरी होती है।

फूल: मखाना के फूल पुर्ण, बड़े, एकाकी चमकदार बैंगनी रंग के लम्बे पुष्पवृंत्त (डण्ठल) के साथ होते हैं। इसका अन्तःकक्ष (थेलकस) गूदेदार एवं प्याले आकार का होता है।

बाह्य दलपुंज (पंखुडियों का समूह): इसकी पंखुड़ी (पेटल) बैगनी रंग की होती है, जिसकी संख्या अधिक (40 से अधिक) होती है। पंखुड़ी का आन्तरिक भाग लोबेट तथा बाहरी भाग ओबोमेट होता है जो धीरे-धीरे पुभंग में मिल जाते हैं।

निषेचन क्रिया: मखाना केवल एक स्वपरागित पौधा है। मखाना के फूल मे निषेचन की क्रिया (बीज बनना) तथा इसके विकास की बहुत ही शुरूआती अवस्था में होती है।

फल: मखाना के फल बेरी प्रकार के बड़े (5 से 8 से.मी. व्यास) स्पंजी (नरम और छिद्रदार), कंटीले एवं अस्तित्व बनाये रखने वाले दलपत्रों से मुकुट धारण किये हुए होते हैं। प्रत्येक फल में 20 से 200 बीज होते हैं।

बीज: मखाना का ताजा बीज थुलथुल एवं धारीदार, चमकीले लाल आवरण से घिरे होते हैं। कुछ समय बाद (3 से 4 दिन बाद) ताजा बीज का आवरण सड़ कर काले रंग में बदल जाते हैं।

मखाना का ताजा बीज (फल के फटने के तुरन्त बाद) जमा करते समय मखाने के बीज का व्यास 0.5 से 1.5 सेंटीमीटर के बीज रहता है। इसका खाने योग्य भाग पेरिस्पर्म होता है जो उजला एवं स्टार्चयुक्त होता है।

संबंधित प्रजातियाँ: यूरेल एक मोनोटाइपिक जीनस है, अतः इस जीनस के अंतर्गत कोई दुसरी प्रजाति नहीं होती है।

गुणसूत्र संख्या: मखाना एक द्विगुणित पौधा है तथा इसके गुणसूत्र की संरचना $29 \times 2 = 58$ है।

नर जननांग: इसमें पुमंग (स्टेमेन) की मात्रा असंख्या, मुक्त एवं गूदेदार पुष्पासन (थैलमस) से संलग्न होती है तथा गर्भकेसर (कार्पल) को ढ़के रहता है।

मादा जननांग: इसका वर्तिकाग्र वर्तिका विहीन (सेसाइल) एवं अण्डाशय अधोवर्ति, बहुस्त्रीकेसर, संयुक्त तथा बहुकोष्ठीय (7-12) होता है।

ISSN: 3049-2211

सारांश

मखाना (फॉक्स नट) मुख्य रूप से बिहार के मिथिलांचल और सीमांचल-कोशी क्षेत्रों में उगाया जाने वाला एक अत्यधिक पौष्टिक और पारंपरिक जलीय फसल (उत्पाद) है। यह स्वास्थ्यवर्धक पोषक तत्वों, जैसे- प्रोटीन, कैल्सियम और मैग्नेशियम का पावरहाउस है, जो इसे उत्तम सुपरफूड बनाता है।

आज के समय में जब पूरी दुनिया स्वस्थ और प्राकृति आहार की ओर रूख कर रही है, तब मखाना का भविष्य अत्यंत उज्जवल है। यह न केवल भारत में बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी एक लोकप्रिय सुपरफूड के रूप में उभर रहा है।

*****

भारत में e-NAM का प्रदर्शन, वर्तमान स्थिति एवं भविष्य की संभावनाएँ

दीपिका वर्मा
पीएच.डी. शोधार्थी, कृषि अर्थशास्त्र विभाग
श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर (राजस्थान)

भारत एक कृषि प्रधान देश है। देश की लगभग आधी से अधिक आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है। कृषि न केवल किसानों की आजीविका का आधार है, बल्कि देश की अर्थव्यवस्था, खाद्य सुरक्षा और ग्रामीण विकास की भी रीढ़ है। लंबे समय तक भारतीय किसानों को अपनी उपज बेचने के लिए स्थानीय कृषि मंडियों पर निर्भर रहना पड़ता था। इससे उन्हें उचित मूल्य नहीं मिल पाता था तथा बिचौलियों का प्रभाव अधिक रहता था।

इन्हीं समस्याओं के समाधान के लिए भारत सरकार ने राष्ट्रीय कृषि बाज़ार (eNAM – National Agriculture Market) की शुरुआत की। यह एक ऑनलाइन कृषि विपणन मंच है, जिसका उद्देश्य देश की विभिन्न कृषि मंडियों को एकीकृत कर किसानों को अपनी उपज का उचित मूल्य दिलाना, पारदर्शिता बढ़ाना तथा कृषि व्यापार को आधुनिक बनाना है।

राष्ट्रीय कृषि बाज़ार (eNAM) क्या है?

राष्ट्रीय कृषि बाज़ार (eNAM) भारत सरकार की एक ऑनलाइन ट्रेडिंग प्रणाली है, जिसके माध्यम से किसान, व्यापारी और खरीदार देशभर की विभिन्न कृषि मंडियों में डिजिटल माध्यम से कृषि उपज का क्रय-विक्रय कर सकते हैं। इस योजना का शुभारंभ 14 अप्रैल 2016 को भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा किया गया। इसका संचालन लघु कृषक कृषि व्यापार संघ (SFAC – Small Farmers' Agribusiness Consortium) करता है। eNAM का उद्देश्य देशभर की कृषि उपज मंडियों को एक साझा डिजिटल मंच पर लाकर एकीकृत राष्ट्रीय कृषि बाज़ार विकसित करना है।

राष्ट्रीय कृषि बाज़ार की आवश्यकता:

1. किसानों को केवल स्थानीय मंडी तक सीमित रहना पड़ता था।
2. बिचौलियों का अत्यधिक हस्तक्षेप था।
3. कृषि उत्पादों का उचित मूल्य नहीं मिल पाता था।
4. मूल्य निर्धारण में पारदर्शिता का अभाव था।
5. विभिन्न राज्यों की मंडियों में अलग-अलग नियम लागू थे।
6. किसानों को बाजार संबंधी जानकारी समय पर नहीं मिलती थी।

इन समस्याओं के समाधान हेतु eNAM जैसी डिजिटल व्यवस्था की आवश्यकता महसूस हुई।

भारत में e-NAM का प्रदर्शन एवं वर्तमान स्थिति:

राष्ट्रीय कृषि बाज़ार (e-NAM) की शुरुआत 14 अप्रैल 2016 को 8 राज्यों की 21 कृषि मंडियों में 24 कृषि वस्तुओं के पायलट व्यापार के साथ की गई थी। इसके बाद यह प्लेटफ़ॉर्म निरंतर विस्तारित होता गया और आज भारत की कृषि विपणन प्रणाली का एक महत्वपूर्ण डिजिटल माध्यम बन चुका है। 30 अगस्त 2025 तक देश की 1,522 कृषि मंडियाँ e-NAM पोर्टल से जुड़ चुकी हैं। इस प्लेटफ़ॉर्म के माध्यम से लगभग 12.03 करोड़ मीट्रिक टन कृषि उपज तथा 49.15 करोड़ गणनीय कृषि उत्पादों का व्यापार किया जा चुका है, जिसका कुल मूल्य लगभग ₹4,39,941 करोड़ रहा है।

ISSN: 3049-2211

राज्यों की दृष्टि से तमिलनाडु (213 मंडियाँ) e-NAM से जुड़ी मंडियों की संख्या में प्रथम स्थान पर है। इसके बाद राजस्थान (173), उत्तर प्रदेश (162), गुजरात (144) तथा मध्य प्रदेश (139) का स्थान है। इन राज्यों में मजबूत कृषि अवसंरचना, प्रभावी सरकारी नीतियों, तकनीकी नवाचार तथा कृषि विपणन सुधारों के कारण e-NAM का विस्तार अपेक्षाकृत अधिक सफल रहा है। वर्ष 2019–20 की तुलना में e-NAM के प्रदर्शन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। इस अवधि में व्यापार की मात्रा 3.39 करोड़ मीट्रिक टन से बढ़कर 12.03 करोड़ मीट्रिक टन हो गई, जबकि व्यापार मूल्य ₹99,387 करोड़ से बढ़कर ₹4,39,941 करोड़ तक पहुँच गया। इसी प्रकार अधिसूचित कृषि वस्तुओं की संख्या 150 से बढ़कर 238 हो गई है। प्लेटफ़ॉर्म पर पंजीकृत किसानों, व्यापारियों, कमीशन एजेंटों तथा किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) की संख्या में भी निरंतर वृद्धि दर्ज की गई है, जो किसानों के बढ़ते विश्वास और डिजिटल कृषि विपणन की सफलता को दर्शाती है।

सरकार द्वारा किसानों की भागीदारी बढ़ाने के लिए प्रत्येक e-NAM मंडी में प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जा रहे हैं। साथ ही वेब पोर्टल, मोबाइल ऐप तथा डिजिटल जागरूकता अभियानों के माध्यम से किसानों को इस प्लेटफ़ॉर्म का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। e-NAM योजना के अंतर्गत प्रत्येक APMC मंडी को आवश्यक हार्डवेयर, गुणवत्ता परीक्षण उपकरण, सफाई, ग्रेडिंग, छंटाई तथा पैकेजिंग जैसी आधारभूत सुविधाओं के विकास हेतु ₹75 लाख तक की वित्तीय सहायता तथा निःशुल्क सॉफ़्टवेयर उपलब्ध कराया जाता है। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप e-NAM भारत में कृषि विपणन को अधिक पारदर्शी, प्रतिस्पर्धी और किसान-केंद्रित बनाने की दिशा में निरंतर प्रगति कर रहा है।

वर्तमान चुनौतियाँ:

1. ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट और डिजिटल सुविधाओं की कमी।
2. अनेक किसानों में डिजिटल साक्षरता का अभाव।
3. सभी मंडियों में गुणवत्ता परीक्षण की समान व्यवस्था उपलब्ध नहीं है।
4. कुछ राज्यों में कृषि विपणन संबंधी नियमों में भिन्नता।
5. छोटे किसानों द्वारा डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म का सीमित उपयोग।
6. परिवहन और भंडारण सुविधाओं की कमी।
7. कुछ क्षेत्रों में बिचौलियों का प्रभाव अभी भी मौजूद है।

भविष्य की संभावनाएँ:

भविष्य में e-NAM भारतीय कृषि विपणन प्रणाली को और अधिक सशक्त बना सकता है। यदि इसे कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI), मौसम पूर्वानुमान, वेयरहाउसिंग, कोल्ड स्टोरेज, लॉजिस्टिक्स तथा डिजिटल वित्तीय सेवाओं के साथ एकीकृत किया जाए, तो किसानों को अधिक लाभ मिल सकता है। इसके अतिरिक्त किसानों को डिजिटल प्रशिक्षण, बेहतर इंटरनेट सुविधा, मंडियों के आधुनिकीकरण तथा किसान उत्पादक संगठनों को प्रोत्साहन देकर e-NAM की प्रभावशीलता को और बढ़ाया जा सकता है। इससे कृषि व्यापार अधिक पारदर्शी, प्रतिस्पर्धी और किसान-केंद्रित बनेगा।

निष्कर्ष:

राष्ट्रीय कृषि बाज़ार (e-NAM) भारत में कृषि विपणन प्रणाली को आधुनिक, पारदर्शी और तकनीक-आधारित बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल है। इस डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म ने किसानों को स्थानीय मंडियों की सीमाओं से बाहर निकलकर व्यापक राष्ट्रीय बाज़ार तक पहुँचने का अवसर प्रदान किया है। ऑनलाइन बोली प्रणाली, गुणवत्ता आधारित मूल्य निर्धारण, डिजिटल भुगतान तथा वास्तविक समय में बाज़ार संबंधी जानकारी जैसी सुविधाओं ने कृषि व्यापार को अधिक कुशल और पारदर्शी बनाया है। वर्ष 2016 में सीमित मंडियों से प्रारंभ हुआ e-NAM आज देशभर की 1,500 से अधिक कृषि मंडियों को जोड़ चुका है। व्यापार की मात्रा, व्यापार मूल्य, पंजीकृत किसानों, व्यापारियों तथा किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) की संख्या में लगातार वृद्धि इस बात का प्रमाण है कि किसानों का इस प्लेटफ़ॉर्म पर विश्वास बढ़ रहा है। इससे कृषि विपणन में प्रतिस्पर्धा बढ़ी है तथा किसानों को उनकी उपज का बेहतर मूल्य प्राप्त करने के अवसर मिले हैं।

हालाँकि, ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल अवसंरचना की कमी, इंटरनेट कनेक्टिविटी, डिजिटल साक्षरता का अभाव, राज्यों के कृषि विपणन कानूनों में असमानता तथा गुणवत्ता परीक्षण जैसी चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं। इन चुनौतियों के समाधान के लिए सरकार, राज्य सरकारों, कृषि मंडियों तथा किसान संगठनों के बीच बेहतर समन्वय और निरंतर निवेश की आवश्यकता है। यदि e-NAM को आधुनिक तकनीकों, वेयरहाउसिंग, लॉजिस्टिक्स, कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) तथा किसान उत्पादक संगठनों के साथ और प्रभावी ढंग से जोड़ा जाए, तो यह भारत में कृषि विपणन प्रणाली को और अधिक सुदृढ़ बना सकता है। भविष्य में e-NAM न केवल किसानों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा, बल्कि कृषि क्षेत्र को अधिक प्रतिस्पर्धी, समावेशी और आत्मनिर्भर बनाने के साथ-साथ "डिजिटल कृषि" और "विकसित भारत" के लक्ष्य को प्राप्त करने में भी एक सशक्त माध्यम सिद्ध होगा।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन द्वारा फसल उत्पादकता में वृद्धि

शाश्वत पटेल, डॉ. एम.जेड. सिद्दीकी, डॉ. शिवेंद्र सिंह, पूजा सिंह
पीएच.डी. शोधार्थी, सस्य विज्ञान
चंद्र शेखर आज़ाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय

हरित क्रांति के पश्चात भारतीय कृषि में रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक एवं असंतुलित प्रयोग से अल्पावधि में फसल उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, लेकिन दीर्घावधि में इसके प्रतिकूल प्रभाव भी सामने आए। निरंतर एवं असंतुलित उर्वरक प्रयोग के कारण मृदा में कार्बनिक पदार्थ की कमी, सूक्ष्म पोषक तत्वों का असंतुलन, मृदा अम्लीकरण तथा भूजल प्रदूषण जैसी समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। इन चुनौतियों के समाधान के लिए वैज्ञानिकों द्वारा एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (Integrated Nutrient Management—INM) की अवधारणा विकसित की गई, जो रासायनिक उर्वरकों, जैविक खादों एवं जैव उर्वरकों के संतुलित एवं समन्वित उपयोग पर आधारित है। यह दृष्टिकोण न केवल फसल उत्पादकता में स्थायी वृद्धि में सहायक है, बल्कि मृदा स्वास्थ्य एवं पर्यावरणीय संतुलन को बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में, जहाँ बड़ी आबादी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि पर निर्भर है, मृदा उर्वरता का संरक्षण खाद्य सुरक्षा के साथ-साथ किसानों की आजीविका के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। लंबे समय से चले आ रहे असंतुलित उर्वरक प्रयोग के कारण अनेक कृषि क्षेत्रों में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटैशियम के साथ-साथ जस्ता, लोहा एवं बोरॉन जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी भी देखी जा रही है। ऐसी परिस्थितियों में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो अल्पकालिक फसल उत्पादन आवश्यकताओं और दीर्घकालिक मृदा संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करता है।

इस लेख में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन की अवधारणा, इसके प्रमुख घटकों एवं कार्यप्रणाली, फसल उत्पादकता तथा मृदा स्वास्थ्य पर इसके प्रभाव, विभिन्न पोषक स्रोतों की तुलना, पारंपरिक पोषक प्रबंधन की तुलना में इसकी उपयोगिता, कार्यान्वयन में आने वाली चुनौतियों तथा भारत में इसकी संभावनाओं का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (INM) क्या है?

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन एक ऐसी वैज्ञानिक कृषि पद्धति है, जिसमें फसल की पोषक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रासायनिक उर्वरकों, जैविक खादों, जैव उर्वरकों एवं फसल अवशेषों का समन्वित एवं संतुलित उपयोग किया जाता है। इसमें गोबर की खाद, कम्पोस्ट एवं हरी खाद जैसे जैविक स्रोतों के साथ राइजोबियम, एजोटोबैक्टर एवं फॉस्फेट घोलक बैक्टीरिया (PSB) जैसे जैव उर्वरकों का उपयोग किया जाता है। इसका मूल उद्देश्य किसी एक पोषक स्रोत पर अत्यधिक निर्भरता को कम करते हुए विभिन्न स्रोतों का ऐसा समायोजन करना है, जिससे मृदा की दीर्घकालिक उर्वरता बनी रहे, पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता बढ़े तथा फसल उत्पादन में स्थिरता प्राप्त हो।

ISSN: 3049-2211

इस पद्धति में मृदा परीक्षण के आधार पर उपलब्ध पोषक तत्वों एवं उनकी कमी का आकलन किया जाता है और फसल की वास्तविक आवश्यकता के अनुसार विभिन्न स्रोतों से पोषक तत्वों की आपूर्ति निर्धारित की जाती है। इससे आवश्यकता से अधिक उर्वरक प्रयोग को कम करने तथा पोषक तत्वों की हानि को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है।

INM के पीछे मूल वैज्ञानिक आधार यह है कि पौधों को केवल प्रमुख पोषक तत्वों—नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटैशियम—की ही नहीं, बल्कि द्वितीयक एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की भी संतुलित मात्रा में आवश्यकता होती है। जैविक स्रोत मृदा में कार्बनिक पदार्थ एवं विभिन्न पोषक तत्वों की आपूर्ति करते हैं तथा मृदा के भौतिक एवं जैविक गुणों में सुधार करते हैं। दूसरी ओर, जैव उर्वरक वायुमंडलीय नाइट्रोजन के स्थिरीकरण तथा मृदा में स्थिर फॉस्फोरस को पौधों के लिए उपलब्ध कराने में सहायक होते हैं। रासायनिक उर्वरक फसल की तात्कालिक पोषक आवश्यकता को शीघ्र पूरा करते हैं। इस प्रकार इन सभी स्रोतों का समन्वित उपयोग एक संतुलित एवं अधिक प्रभावी पोषक प्रबंधन प्रणाली का निर्माण करता है।

चित्र 1: एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (INM) के प्रमुख घटक

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के प्रमुख उद्देश्य

1. फसल की पोषक आवश्यकताओं की संतुलित एवं समयबद्ध पूर्ति करना।
2. मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बनाए रखना तथा मृदा संरचना में सुधार करना।
3. रासायनिक उर्वरकों पर अत्यधिक निर्भरता को कम करना तथा उत्पादन लागत में कमी लाना।
4. मृदा सूक्ष्मजीवों की गतिविधि एवं जैव-विविधता को बढ़ावा देना।
5. दीर्घकाल में फसल उत्पादकता की स्थिरता एवं संवहनीयता सुनिश्चित करना।
6. पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता बढ़ाना तथा उनकी अनावश्यक हानि को कम करना।
7. पर्यावरण प्रदूषण, विशेषकर भूजल में नाइट्रेट संदूषण, को न्यूनतम करना।

विभिन्न पोषक स्रोत एवं उनकी विशेषताएँ

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन में विभिन्न पोषक स्रोतों का उपयोग उनकी उपलब्धता, पोषक तत्वों की मात्रा तथा फसल की आवश्यकता के अनुसार किया जाता है। प्रमुख पोषक स्रोतों, उनके उदाहरण, पोषक तत्वों एवं मुक्ति दर का विवरण निम्न तालिका में प्रस्तुत है:

तालिका 1: एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन में उपयोग किए जाने वाले प्रमुख पोषक स्रोत एवं उनकी विशेषताएँ

पोषक स्रोत	उदाहरण	प्रमुख पोषक तत्व/भूमिका	पोषक तत्व मुक्ति दर
रासायनिक उर्वरक	यूरिया, DAP, MOP	N, P, K (सांद्रित)	तीव्र एवं शीघ्र उपलब्ध
गोबर की खाद (FYM)	पशु गोबर, कम्पोस्ट	N, P, K एवं सूक्ष्म तत्व	धीमी एवं दीर्घकालिक
हरी खाद	ढैंचा, सनई, ग्वार	मुख्यतः नाइट्रोजन एवं कार्बनिक पदार्थ	मध्यम
जैव उर्वरक	राइजोबियम, PSB, एजोटोबैक्टर	N स्थिरीकरण एवं P घुलनशीलता	जैविक क्रिया आधारित
फसल अवशेष	पराली, भूसा, तना	N, P, K एवं कार्बनिक पदार्थ	धीमी
वर्मी कम्पोस्ट	केंचुआ खाद	N, P, K एवं ह्यूमस	मध्यम से धीमी

तालिका से स्पष्ट है कि रासायनिक उर्वरक पौधों को पोषक तत्व अपेक्षाकृत शीघ्र उपलब्ध कराते हैं, जबकि जैविक स्रोत धीरे-धीरे पोषक तत्व मुक्त करते हुए मृदा की उर्वरता एवं संरचना में दीर्घकालिक सुधार करते हैं। जैव उर्वरक सूक्ष्मजीवी क्रियाओं के माध्यम से पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने में सहायक होते हैं। इसलिए इन सभी स्रोतों का उचित एवं संतुलित समन्वय INM की मूल भावना है।

ISSN: 3049-2211

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन की कार्यप्रणाली

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए एक व्यवस्थित एवं निरंतर प्रक्रिया अपनाई जाती है। सर्वप्रथम मृदा परीक्षण के माध्यम से मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों की मात्रा एवं उनकी कमी का आकलन किया जाता है। इसके आधार पर फसल की पोषक आवश्यकताओं को निर्धारित कर रासायनिक उर्वरकों, जैविक खादों एवं जैव उर्वरकों की उपयुक्त मात्रा एवं संयोजन तय किया जाता है।

उर्वरकों एवं खादों का प्रयोग सही स्रोत, सही मात्रा, सही समय एवं सही स्थान को ध्यान में रखते हुए करना आवश्यक है। इससे पोषक तत्वों की हानि कम होती है और उनकी उपयोग दक्षता बढ़ती है। फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने तथा हरी खाद एवं जैविक खादों के उपयोग से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बनाए रखने में सहायता मिलती है। वहीं, उपयुक्त जैव उर्वरकों के प्रयोग से नाइट्रोजन स्थिरीकरण एवं फॉस्फोरस की उपलब्धता जैसी जैविक प्रक्रियाओं को बढ़ावा मिलता है। इस पद्धति को निरंतर अपनाने से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणवत्ता में क्रमिक सुधार हो सकता है। परिणामस्वरूप पोषक तत्वों की उपलब्धता, पौधों की वृद्धि तथा फसल उत्पादकता में सुधार के साथ-साथ उत्पादन प्रणाली की दीर्घकालिक स्थिरता भी बढ़ती है।

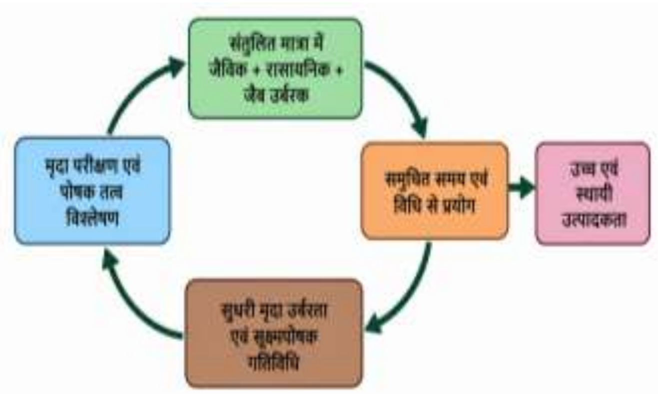

चित्र 2: एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन का चक्रीय प्रभाव — मृदा से उत्पादकता तक

फसल उत्पादकता पर प्रभाव

विभिन्न फसलों पर किए गए अध्ययनों से संकेत मिलता है कि एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन अपनाने से केवल रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग की तुलना में फसल उत्पादकता में सुधार किया जा सकता है। धान, गेहूं, मक्का, गन्ना एवं दलहनी फसलों में जैविक एवं रासायनिक पोषक स्रोतों के संतुलित संयोजन से न केवल फसल उपज में वृद्धि देखी गई है, बल्कि दीर्घकाल में उत्पादकता को बनाए रखने में भी सहायता मिली है। इसका प्रमुख कारण यह है कि रासायनिक उर्वरक फसल की तात्कालिक पोषक आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, जबकि जैविक स्रोत मृदा की संरचना, जल धारण क्षमता एवं सूक्ष्मजीवी गतिविधियों में सुधार करते हैं। दोनों का संयुक्त प्रभाव पौधों के संतुलित एवं समुचित विकास के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करता है।

दीर्घकालिक खेत परीक्षणों से यह भी स्पष्ट हुआ है कि केवल रासायनिक उर्वरकों पर निरंतर निर्भर रहने वाली उत्पादन प्रणालियों में कुछ परिस्थितियों में उत्पादकता स्थिर हो सकती है या उसमें गिरावट की प्रवृत्ति दिखाई दे सकती है। इसके विपरीत, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन में जैविक एवं रासायनिक स्रोतों के समन्वित उपयोग से मृदा की उर्वरता बनाए रखने तथा उत्पादकता को स्थिर रखने में सहायता मिलती है। यह प्रभाव विशेष रूप से गहन खेती वाले क्षेत्रों में महत्वपूर्ण है, जहाँ वर्ष में दो से तीन फसलें लेने के कारण मृदा से पोषक तत्वों का निरंतर निष्कासन होता रहता है।

इसके अतिरिक्त, फसल चक्र में दलहनी फसलों को शामिल करने से जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण के माध्यम से मृदा में नाइट्रोजन की उपलब्धता बढ़ाने में सहायता मिलती है। इस प्रकार, INM केवल वर्तमान फसल की पोषक आवश्यकता पूरी करने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मृदा उर्वरता, पोषक तत्व उपयोग दक्षता एवं दीर्घकालिक फसल उत्पादकता के बीच संतुलन स्थापित करने वाली समग्र पोषक प्रबंधन प्रणाली है।

मृदा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण पर प्रभाव

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन का एक प्रमुख लाभ मृदा स्वास्थ्य में दीर्घकालिक सुधार है। जैविक स्रोतों के नियमित एवं उचित उपयोग से मृदा में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ती है, जिससे मृदा की जल धारण क्षमता, वायु संचार, संरचना एवं धनायन विनिमय क्षमता में सुधार होता है। इसके साथ ही, मृदा में लाभकारी सूक्ष्मजीवों, जैसे राइजोबियम, माइकोराइज़ा एवं फॉस्फेट घोलक बैक्टीरिया की गतिविधि बढ़ती है। ये सूक्ष्मजीव पोषक तत्वों के जैविक चक्रण एवं पौधों के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मृदा में कार्बनिक पदार्थ की वृद्धि केवल पोषक तत्वों की आपूर्ति तक सीमित नहीं रहती, बल्कि इससे मृदा के भौतिक गुणों, जैसे संरचना, सरंध्रता एवं जल अंतःस्राव क्षमता में भी सुधार होता है। इससे मृदा की जल एवं वायु संबंधी स्थिति बेहतर होती है और विशेष रूप से वर्षा-प्रभावित तथा ढलान वाले क्षेत्रों में मृदा अपरदन को कम करने में सहायता मिलती है। संतुलित पोषण से पौधों की वृद्धि एवं उनकी प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रति सहनशीलता में भी सुधार हो सकता है,

जिससे कुछ परिस्थितियों में रासायनिक कीटनाशकों पर निर्भरता कम करने में सहायता मिलती है।

पर्यावरणीय दृष्टिकोण से भी एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन महत्वपूर्ण है। रासायनिक उर्वरकों के आवश्यकता से अधिक प्रयोग में कमी आने से पोषक तत्वों के अपवाह एवं रिसाव को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है। परिणामस्वरूप भूजल में नाइट्रेट संदूषण तथा जलाशयों में यूट्रोफिकेशन (अतिपोषण) जैसी समस्याओं का जोखिम कम किया जा सकता है। इस प्रकार INM का प्रभाव केवल फसल पोषण तक सीमित न रहकर मृदा स्वास्थ्य, जल गुणवत्ता एवं संपूर्ण कृषि पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन तक विस्तृत होता है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन बनाम केवल रासायनिक उर्वरक: तुलनात्मक विश्लेषण

पारंपरिक रूप से केवल रासायनिक उर्वरकों पर आधारित पोषक प्रबंधन एवं एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के बीच प्रमुख अंतरों को निम्न तालिका में प्रस्तुत किया गया है:

तालिका 2: एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन एवं केवल रासायनिक उर्वरकों पर आधारित पद्धति की तुलना

मापदंड	केवल रासायनिक उर्वरक	एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन (INM)
मृदा कार्बनिक पदार्थ	समय के साथ घटने की प्रवृत्ति	निरंतर बना रहने एवं बढ़ने की संभावना
दीर्घकालिक उत्पादकता	स्थिर या घटने की प्रवृत्ति	स्थिर एवं दीर्घकालिक रूप से बेहतर
उर्वरक उपयोग दक्षता	अपेक्षाकृत कम	अधिक एवं बेहतर
मृदा सूक्ष्मजीव गतिविधि	प्रभावित या कम	अधिक सक्रिय
उत्पादन लागत	अधिक, विशेषकर पूर्ण रासायनिक निर्भरता में	उचित प्रबंधन से कम होने की संभावना
पर्यावरणीय प्रभाव	भूजल प्रदूषण एवं मृदा अम्लीकरण का जोखिम	पोषक हानि एवं पर्यावरणीय प्रभाव को कम करने में सहायक

तालिका से स्पष्ट है कि केवल रासायनिक उर्वरकों पर निर्भर रहने की तुलना में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन मृदा स्वास्थ्य एवं दीर्घकालिक उत्पादकता के लिए अधिक संतुलित दृष्टिकोण प्रदान करता है। विभिन्न पोषक स्रोतों के समन्वित उपयोग से पोषक तत्वों की उपलब्धता एवं उपयोग दक्षता में सुधार होता है तथा अनावश्यक उर्वरक प्रयोग को कम किया जा सकता है। इससे उत्पादन लागत को नियंत्रित करने के साथ-साथ मृदा एवं पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभावों को भी कम करने में सहायता मिलती है।

कार्यान्वयन में चुनौतियाँ

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन के अनेक लाभों के बावजूद इसके व्यापक स्तर पर कार्यान्वयन में कई व्यावहारिक चुनौतियाँ हैं। जैविक खादों की पर्याप्त एवं गुणवत्तायुक्त उपलब्धता एक प्रमुख बाधा है। अधिकांश किसानों के पास पशुधन की सीमित संख्या होने के कारण पर्याप्त मात्रा में गोबर की खाद उपलब्ध नहीं हो पाती। इसके अतिरिक्त, जैविक खादों के परिवहन, भंडारण एवं खेत तक पहुंचाने में अपेक्षाकृत अधिक श्रम, समय एवं लागत लगती है, जबकि रासायनिक उर्वरक आसानी से उपलब्ध एवं उपयोग में सुविधाजनक होते हैं।

किसानों में नियमित मृदा परीक्षण एवं वैज्ञानिक पोषक प्रबंधन के प्रति जागरूकता की कमी भी विभिन्न पोषक स्रोतों के उचित अनुपात में उपयोग को प्रभावित करती है। इसी प्रकार जैव उर्वरकों की गुणवत्ता, प्रभावशीलता एवं भंडारण अवधि से संबंधित समस्याएँ भी इनके व्यापक उपयोग में बाधा बनती हैं। यदि गुणवत्तायुक्त जैव उर्वरक उपलब्ध न हों या उनका भंडारण एवं प्रयोग उचित तरीके से न किया जाए, तो अपेक्षित परिणाम प्राप्त करना कठिन हो सकता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण चुनौती यह है कि INM के अनेक लाभ तत्काल दिखाई देने के बजाय कुछ फसल चक्रों के बाद अधिक स्पष्ट होते हैं। इसलिए अल्पकालिक लाभ की अपेक्षा रखने वाले किसान इसे अपनाने में संकोच कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, विभिन्न कृषि-जलवायु क्षेत्रों, मृदा प्रकारों एवं फसल प्रणालियों के लिए स्थान-विशिष्ट INM अनुशंसाओं की आवश्यकता होती है। एक ही सामान्य पोषक प्रबंधन फार्मूला सभी क्षेत्रों एवं फसलों के लिए समान रूप से प्रभावी नहीं हो सकता।

जैव उर्वरकों की गुणवत्ता नियंत्रण एवं मानकीकरण की कमी भी बाजार में उपलब्ध उत्पादों की विश्वसनीयता को प्रभावित करती है। अतः गुणवत्तापूर्ण उत्पादन, प्रभावी प्रमाणन एवं गुणवत्ता नियंत्रण व्यवस्था को मजबूत करना आवश्यक है। साथ ही, किसानों को प्रशिक्षण, प्रदर्शन एवं स्थानीय स्तर पर तकनीकी मार्गदर्शन उपलब्ध कराकर INM के व्यावहारिक लाभों से अवगत कराना इसके व्यापक अंगीकरण में सहायक हो सकता है।

भारत में एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन को बढ़ावा देने हेतु प्रयास

भारत सरकार एवं विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा संतुलित एवं वैज्ञानिक पोषक तत्व प्रबंधन को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न योजनाएँ

ISSN: 3049-2211

एवं कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं। मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के अंतर्गत किसानों को उनकी भूमि में उपलब्ध पोषक तत्वों की स्थिति की जानकारी प्रदान की जाती है, जिससे वे मृदा परीक्षण के आधार पर उर्वरक प्रबंधन कर सकें। इसी प्रकार जैविक एवं प्राकृतिक संसाधन-आधारित कृषि को प्रोत्साहित करने वाली विभिन्न योजनाओं के माध्यम से जैविक खादों एवं जैव उर्वरकों के उपयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) एवं राज्य कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा विभिन्न फसलों एवं कृषि-जलवायु क्षेत्रों के लिए उपयुक्त पोषक प्रबंधन तकनीकों एवं INM मॉडल पर अनुसंधान किया जा रहा है। कृषि विज्ञान केंद्रों के माध्यम से किसानों को प्रशिक्षण, खेत प्रदर्शन एवं तकनीकी सलाह प्रदान की जाती है। इन प्रयासों से किसानों में संतुलित उर्वरक प्रयोग, जैविक स्रोतों के उपयोग एवं मृदा परीक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ाने में सहायता मिलती है।

इसके अतिरिक्त, नीम-लेपित यूरिया (Neem Coated Urea) के उपयोग को बढ़ावा देने जैसी पहलों का उद्देश्य नाइट्रोजन के उपयोग को अधिक प्रभावी बनाना तथा इसकी अनावश्यक हानि को कम करना है। सूक्ष्म सिंचाई के साथ उर्वरक प्रबंधन को जोड़ने वाली फर्टिगेशन (Fertigation) तकनीक भी पोषक तत्वों को जल के साथ नियंत्रित मात्रा में जड़ क्षेत्र तक पहुँचाने में उपयोगी है। इससे पोषक तत्वों के अधिक सटीक उपयोग एवं उनकी हानि को कम करने में सहायता मिल सकती है।

कृषि विज्ञान केंद्रों, गैर-सरकारी संगठनों एवं निजी क्षेत्र द्वारा संचालित किसान जागरूकता कार्यक्रम तथा मोबाइल एप्लिकेशन आधारित कृषि सलाह भी वैज्ञानिक पोषक प्रबंधन की जानकारी किसानों तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इन प्रयासों को स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप और अधिक प्रभावी बनाकर INM के व्यापक अंगीकरण को बढ़ावा दिया जा सकता है।

निष्कर्ष

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन आधुनिक सतत कृषि प्रणाली का एक महत्वपूर्ण आधार है, जो फसल उत्पादकता, मृदा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करता है। रासायनिक उर्वरकों, जैविक खादों, जैव उर्वरकों एवं फसल अवशेषों का वैज्ञानिक एवं संतुलित समन्वय फसल की पोषक आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ मृदा की दीर्घकालिक उर्वरता बनाए रखने में सहायक होता है। INM के माध्यम से पोषक तत्वों की उपयोग दक्षता बढ़ाई जा सकती है, अनावश्यक उर्वरक प्रयोग एवं पोषक हानि को कम किया जा सकता है तथा मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में सुधार किया जा सकता है। इसके परिणामस्वरूप फसल उत्पादकता को लंबे समय तक स्थिर बनाए रखने तथा उत्पादन लागत एवं पर्यावरणीय प्रभावों को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है।

भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में, जहाँ मृदा स्वास्थ्य एवं संसाधनों की दीर्घकालिक सुरक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण है, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन को व्यापक स्तर पर अपनाना आवश्यक है। इसके लिए मृदा परीक्षण, संतुलित उर्वरक प्रयोग, गुणवत्तायुक्त जैविक एवं जैव उर्वरकों की उपलब्धता, किसान प्रशिक्षण तथा स्थान-विशिष्ट पोषक प्रबंधन अनुशंसाओं को बढ़ावा देना आवश्यक होगा। इस प्रकार INM न केवल किसानों की आर्थिक एवं उत्पादन क्षमता को मजबूत कर सकता है, बल्कि राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा तथा पर्यावरणीय संवहनीयता के लक्ष्यों की प्राप्ति में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

♣♣♣

सुपरफूड मखाना: सेहत और स्वाद का परफेक्ट कॉम्बिनेशन

आशीष राय , धीरेन्द्र कुमार, संजय कुमार
क्षेत्रीय अनुसंधान केंद्र, झंझारपुर, मधुबनी, बिहार
डॉ. राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार

भारत में पारंपरिक खाद्य पदार्थों की समृद्ध परंपरा रही है। हमारे गांवों और खेतों से निकलने वाले कई ऐसे खाद्य पदार्थ हैं, जो न केवल स्वादिष्ट होते हैं बल्कि स्वास्थ्य के लिए भी बेहद लाभकारी माने जाते हैं। इन्हीं में से एक है मखाना, जिसे आज पूरी दुनिया "सुपरफूड" के नाम से जानने लगी है। बिहार की धरती पर विशेष रूप से उगाया जाने वाला मखाना अब देश ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी अपनी पहचान बना चुका है। पौष्टिकता, स्वाद और स्वास्थ्य लाभों से भरपूर मखाना आधुनिक जीवनशैली में हेल्दी स्नैक के रूप में तेजी से लोकप्रिय हो रहा है।

मखाना को अंग्रेजी में "Fox Nut" या "Lotus Seed" कहा जाता है। यह मुख्य रूप से तालाबों और जलाशयों में उगने वाले पौधे से प्राप्त होता है। भारत में मखाना उत्पादन का सबसे बड़ा केंद्र बिहार है, जहां के मिथिलांचल क्षेत्र में इसकी खेती बड़े पैमाने पर की जाती है। यहां के किसानों के लिए मखाना केवल एक फसल नहीं, बल्कि आय और पहचान का महत्वपूर्ण स्रोत बन चुका है।

पोषण से भरपूर सुपरफूड

मखाना को सुपरफूड इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें शरीर के लिए जरूरी कई पोषक तत्व मौजूद होते हैं। इसमें प्रोटीन, कैल्शियम, आयरन, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस और एंटीऑक्सीडेंट भरपूर मात्रा में पाए जाते हैं। साथ ही इसमें कैलोरी कम और फाइबर अधिक होता है, जो इसे स्वास्थ्य के प्रति जागरूक लोगों के लिए आदर्श खाद्य पदार्थ बनाता है। आजकल लोग जंक फूड और तली-भुनी चीजों की जगह हेल्दी स्नैक्स की ओर तेजी से बढ़ रहे हैं। ऐसे में मखाना एक बेहतरीन विकल्प बनकर उभरा है। इसे हल्का भूनकर या कम मसालों के साथ खाने से स्वाद भी मिलता है और शरीर को जरूरी पोषण भी।

वजन घटाने में सहायक

मखाना वजन नियंत्रित रखने में काफी मददगार माना जाता है। इसमें कैलोरी कम और फाइबर अधिक होता है, जिससे लंबे समय तक पेट भरा हुआ महसूस होता है। यही कारण है कि जो लोग वजन कम करना चाहते हैं, वे अपनी डाइट में मखाना को शामिल कर रहे हैं। फास्ट फूड और अधिक तेल वाले स्नैक्स की तुलना में मखाना कहीं ज्यादा हेल्दी विकल्प है। शाम की भूख मिटाने के लिए भुना हुआ मखाना स्वादिष्ट और पौष्टिक दोनों साबित होता है। फिटनेस प्रेमियों और जिम जाने वाले युवाओं के बीच इसकी लोकप्रियता तेजी से बढ़ रही है।

हृदय स्वास्थ्य के लिए लाभकारी

मखाना हृदय को स्वस्थ रखने में भी मदद करता है। इसमें सोडियम कम और पोटैशियम अधिक मात्रा में पाया जाता है, जो रक्तचाप

को नियंत्रित रखने में सहायक होता है। नियमित रूप से सीमित मात्रा में मखाना खाने से दिल संबंधी समस्याओं का खतरा कम हो सकता है।

इसके अलावा इसमें मौजूद एंटीऑक्सीडेंट शरीर में फ्री रेडिकल्स को कम करने में मदद करते हैं, जिससे शरीर की कोशिकाएं स्वस्थ रहती हैं। डॉक्टर भी हेल्दी स्नैक के रूप में मखाना खाने की सलाह देते हैं।

मधुमेह रोगियों के लिए बेहतर विकल्प

मखाना का ग्लाइसेमिक इंडेक्स कम होता है, यानी यह रक्त में शर्करा के स्तर को तेजी से नहीं बढ़ाता। इसलिए मधुमेह रोगियों के लिए यह एक सुरक्षित और पौष्टिक स्नैक माना जाता है। बिना ज्यादा तेल और मसालों के भुना हुआ मखाना डायबिटीज मरीजों के लिए काफी लाभकारी हो सकता है।

हालांकि किसी भी खाद्य पदार्थ का सेवन संतुलित मात्रा में ही करना चाहिए। चिकित्सकीय सलाह के अनुसार मखाना को आहार में शामिल करना बेहतर होता है।

हड्डियों और मांसपेशियों को मजबूती

कैल्शियम और मैग्नीशियम से भरपूर मखाना हड्डियों को मजबूत बनाने में सहायक है। बच्चों, महिलाओं और बुजुर्गों के लिए इसका सेवन विशेष रूप से लाभकारी माना जाता है। बढ़ती उम्र में हड्डियों की कमजोरी और जोड़ों के दर्द जैसी समस्याओं से बचाव में भी यह मदद कर सकता है।

इसके अलावा इसमें मौजूद प्रोटीन शरीर की मांसपेशियों को मजबूत बनाने में सहायक होता है। यही वजह है कि खिलाड़ी और फिटनेस के प्रति जागरूक लोग भी इसे अपनी डाइट में शामिल करते हैं।

व्रत और पारंपरिक भोजन का हिस्सा

भारत में मखाना का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व भी है। नवरात्र, एकादशी और अन्य व्रतों में लोग मखाना का सेवन बड़े चाव से करते हैं। मखाना की खीर, भुना मखाना और मखाना नमकीन लंबे समय से भारतीय रसोई का हिस्सा रहे हैं।

आजकल बाजार में कई तरह के फ्लेवर्ड मखाना उपलब्ध हैं, जैसे टमाटर फ्लेवर, पुदीना फ्लेवर, चीज फ्लेवर और मसाला मखाना। इससे युवाओं और बच्चों में इसकी मांग तेजी से बढ़ी है।

किसानों की आय बढ़ाने में मददगार

मखाना केवल स्वास्थ्य के लिए ही नहीं, बल्कि किसानों की आर्थिक स्थिति मजबूत करने में भी अहम भूमिका निभा रहा है। बिहार के दरभंगा, मधुबनी, पूर्णिया, कटिहार और सुपौल जैसे जिलों में हजारों किसान मखाना उत्पादन से जुड़े हुए हैं।

पिछले कुछ वर्षों में मखाना की मांग देश और विदेश में तेजी से बढ़ी है। इसके कारण किसानों को बेहतर बाजार और अच्छे दाम मिलने लगे हैं। केंद्र और राज्य सरकारें भी मखाना उत्पादन और प्रसंस्करण को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएं चला रही हैं। बिहार के मखाना को जीआई टैग (Geographical Indication Tag) मिलने के बाद इसकी पहचान और मजबूत हुई है। इससे अंतरराष्ट्रीय बाजार में भी इसकी मांग बढ़ी है। आज यह किसानों के लिए नकदी फसल के रूप में उभर रहा है।

रोजगार और उद्योग की नई संभावनाएं

मखाना से जुड़े प्रसंस्करण उद्योग भी तेजी से विकसित हो रहे हैं। पैकेजिंग, फ्लेवरिंग और निर्यात के कारण युवाओं के लिए रोजगार के नए अवसर पैदा हुए हैं। कई स्टार्टअप और खाद्य कंपनियां अब मखाना आधारित उत्पादों को बाजार में उतार रही हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में महिला स्वयं सहायता समूह भी मखाना प्रसंस्करण और पैकेजिंग से जुड़कर आत्मनिर्भर बन रही हैं। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को भी मजबूती मिल रही है।

कैसे करें सेवन?

मखाना का सेवन कई तरीकों से किया जा सकता है। इसे हल्का घी या तेल डालकर भून सकते हैं। स्वाद के लिए इसमें हल्का नमक, काली मिर्च या चाट मसाला मिलाया जा सकता है। इसके अलावा मखाना की खीर, सब्जी और नमकीन भी काफी पसंद की जाती है। विशेषज्ञों के अनुसार सुबह या शाम के समय सीमित मात्रा में मखाना खाना अधिक लाभकारी माना जाता है। अधिक मात्रा में किसी भी चीज का सेवन नुकसानदायक हो सकता है, इसलिए संतुलन जरूरी है।

निष्कर्ष

मखाना वास्तव में स्वाद और सेहत का परफेक्ट कॉम्बिनेशन है। यह केवल एक पारंपरिक खाद्य पदार्थ नहीं, बल्कि आधुनिक जीवनशैली के लिए एक बेहतरीन सुपरफूड बन चुका है। पोषण से भरपूर होने के साथ-साथ यह किसानों की आय बढ़ाने और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

आज जब लोग हेल्दी लाइफस्टाइल की ओर बढ़ रहे हैं, तब मखाना जैसे देसी सुपरफूड की अहमियत और बढ़ जाती है। यदि इसे नियमित और संतुलित मात्रा में आहार का हिस्सा बनाया जाए, तो यह शरीर को ऊर्जा, पोषण और बेहतर स्वास्थ्य देने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। बिहार का यह अनमोल उत्पाद अब दुनिया भर में भारतीय कृषि और पारंपरिक खानपान की नई पहचान बनता जा रहा है।

*****

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना और संतुलित उर्वरक उपयोग

सिद्धार्थ मिश्रा, प्रशांत गुप्ता, अनुराधा चौधरी

पीएच.डी. शोधार्थी, मृदा विज्ञान विभाग, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश

प्रियल निम- पीएच.डी. शोधार्थी, मृदा विज्ञान विभाग, चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर, उत्तर प्रदेश

भारतीय किसानों में लंबे समय से यह प्रवृत्ति रही है कि वे मिट्टी की वास्तविक पोषक स्थिति जाने बिना अनुमान, परंपरा अथवा अनुभव के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार के असंतुलित उर्वरण से न केवल उत्पादन लागत बढ़ती है, बल्कि मृदा के पोषक संतुलन एवं स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। इसी समस्या के समाधान के लिए भारत सरकार द्वारा 'मृदा स्वास्थ्य कार्ड' (Soil Health Card—SHC) योजना संचालित की जा रही है। इसके अंतर्गत किसानों के खेतों से मृदा नमूने एकत्र कर उनका वैज्ञानिक परीक्षण किया जाता है तथा परीक्षण परिणामों के आधार पर फसल-विशेष एवं उर्वरक-विशेष सिफारिशें उपलब्ध कराई जाती हैं।

यह योजना संतुलित उर्वरक उपयोग को बढ़ावा देने का एक महत्वपूर्ण एवं व्यावहारिक माध्यम है, जो किसानों को वैज्ञानिक आँकड़ों के आधार पर उर्वरक प्रबंधन संबंधी निर्णय लेने में सक्षम बनाती है। प्रस्तुत लेख में मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना की प्रक्रिया, इसके अंतर्गत परीक्षित प्रमुख पैरामीटर, संतुलित उर्वरण से इसके प्रत्यक्ष संबंध, योजना के लाभ, क्रियान्वयन की चुनौतियों तथा भारतीय कृषि में इसकी प्रगति एवं भविष्य की संभावनाओं पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

मुख्य शब्द: मृदा स्वास्थ्य कार्ड, संतुलित उर्वरण, मृदा परीक्षण, पोषक तत्व प्रबंधन, उर्वरक सिफारिश, टिकाऊ कृषि।

प्रस्तावना

मृदा की उर्वरता एवं पोषक स्थिति का सही ज्ञान किसी भी वैज्ञानिक कृषि निर्णय का महत्वपूर्ण आधार है। किंतु भारत में अनेक किसान आज भी अपने खेत की मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों की वास्तविक मात्रा जाने बिना उर्वरकों का प्रयोग करते हैं। यह प्रवृत्ति प्रायः परंपरागत अनुभव, पड़ोसी किसानों की देखा-देखी अथवा उर्वरक विक्रेता की सलाह पर आधारित होती है, न कि वैज्ञानिक मृदा परीक्षण एवं आँकड़ों पर। परिणामस्वरूप कहीं आवश्यकता से अधिक उर्वरक का प्रयोग होता है, तो कहीं आवश्यक पोषक तत्वों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध नहीं हो पाती। इससे उत्पादन लागत बढ़ने के साथ-साथ मृदा स्वास्थ्य एवं पोषक संतुलन भी प्रभावित हो सकता है।

इसी व्यापक समस्या के समाधान के लिए भारत सरकार द्वारा 'मृदा स्वास्थ्य कार्ड' (Soil Health Card) योजना आरंभ की गई। इसका उद्देश्य किसानों को उनके खेत की मिट्टी की वैज्ञानिक जाँच के आधार पर उसकी पोषक स्थिति की जानकारी तथा फसल-विशेष उर्वरक

ISSN: 3049-2211

चित्र 1: मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना की प्रक्रिया

सिफारिश उपलब्ध कराना है। इस प्रकार यह योजना संतुलित उर्वरण की अवधारणा को प्रयोगशाला से सीधे किसान के खेत तक पहुँचाने वाला एक महत्वपूर्ण एवं व्यावहारिक माध्यम है। यह अनुमान-आधारित उर्वरक प्रयोग के स्थान पर मृदा परीक्षण एवं आँकड़ा-आधारित निर्णय को बढ़ावा देती है।

यह समझना महत्वपूर्ण है कि केवल मृदा परीक्षण करा लेना ही पर्याप्त नहीं है। इसका वास्तविक लाभ तभी प्राप्त होता है, जब किसान परीक्षण से प्राप्त सिफारिशों को अपने खेत में उचित मात्रा एवं समय पर लागू करें। इसलिए मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना एवं संतुलित उर्वरक उपयोग को दो अलग-अलग विषयों के रूप में नहीं, बल्कि एक ही प्रक्रिया की दो परस्पर जुड़ी कड़ियों के रूप में देखा जाना चाहिए। पहली कड़ी है मृदा की वैज्ञानिक जाँच, जबकि दूसरी कड़ी है परीक्षण परिणामों के आधार पर उचित उर्वरक प्रबंधन। इन दोनों के समन्वय से मृदा की उर्वरता बनाए रखने, उत्पादन लागत को नियंत्रित करने एवं उर्वरकों की उपयोग-दक्षता बढ़ाने में सहायता मिल सकती है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना क्या है?

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के अंतर्गत किसान के खेत से मृदा नमूना वैज्ञानिक विधि से एकत्र किया जाता है और उसे मृदा परीक्षण प्रयोगशाला में भेजा जाता है। प्रयोगशाला में नमूने का विश्लेषण कर उसमें उपलब्ध प्रमुख एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों तथा अन्य महत्वपूर्ण मृदा गुणों का आकलन किया जाता है। इन परीक्षण परिणामों के आधार पर किसान को मृदा स्वास्थ्य कार्ड उपलब्ध कराया जाता है, जिसमें उसके खेत की मृदा की पोषक स्थिति तथा फसल-विशेष उर्वरक सिफारिशें दी जाती हैं। इस पूरी प्रक्रिया को चित्र 1 में दर्शाया गया है।

प्रत्येक खेत की मृदा का परीक्षण सामान्यतः दो से तीन वर्ष के अंतराल पर किया जाता है, ताकि समय के साथ मृदा की पोषक स्थिति में होने वाले परिवर्तनों की जानकारी प्राप्त की जा सके। मृदा स्वास्थ्य कार्ड में वर्तमान पोषक स्थिति के साथ-साथ फसल के अनुसार आवश्यक उर्वरकों की मात्रा की सिफारिश भी की जाती है। इससे किसान अपनी फसल की आवश्यकता एवं मृदा की वास्तविक स्थिति के आधार पर उर्वरक प्रयोग की योजना बना सकते हैं।

मृदा नमूना संग्रहण की शुद्धता पूरी योजना की विश्वसनीयता का एक महत्वपूर्ण आधार है। यदि नमूना सही विधि से एकत्र नहीं किया गया हो, जैसे खेत के केवल एक स्थान से या खाद एवं उर्वरक के ढेर के निकट से नमूना लेना, तो परीक्षण परिणाम पूरे खेत की वास्तविक स्थिति का सही प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते। इसके परिणामस्वरूप उर्वरक सिफारिश भी अनुपयुक्त हो सकती है।

इसलिए प्रतिनिधि मृदा नमूना तैयार करना आवश्यक है। इसके लिए खेत के विभिन्न भागों से उचित संख्या में स्थानों का चयन कर वहाँ से मृदा एकत्र की जाती है तथा उन्हें मिलाकर एक प्रतिनिधि नमूना तैयार किया जाता है। सामान्यतः 'V' आकार में अथवा टेढ़े-मेढ़े मार्ग में कई स्थानों से नमूना लेने की विधि अपनाई जाती है। इस प्रकार प्राप्त नमूना खेत की औसत मृदा स्थिति को बेहतर ढंग से दर्शा सकता है।

योजना के अंतर्गत परीक्षित पैरामीटर

मृदा स्वास्थ्य कार्ड के अंतर्गत मृदा के प्रमुख पोषक तत्वों एवं महत्वपूर्ण भौतिक-रासायनिक गुणों की जाँच की जाती है। इन पैरामीटरों को विभिन्न समूहों में वर्गीकृत कर चित्र 2 में दर्शाया गया है।

चित्र 2: मृदा स्वास्थ्य कार्ड में शामिल प्रमुख पैरामीटर समूह

इन पैरामीटरों का विस्तृत विवरण एवं उनका महत्व निम्न तालिका में प्रस्तुत किया गया है:

पैरामीटर समूह	सम्मिलित तत्व/गुण	मुख्य महत्व
प्रमुख पोषक तत्व	नाइट्रोजन (N), फॉस्फोरस (P), पोटैशियम (K)	फसल वृद्धि एवं उपज का आधार
द्वितीयक पोषक तत्व	गंधक (S)	प्रोटीन एवं तेल निर्माण में आवश्यक
सूक्ष्म पोषक तत्व	जिंक, बोरॉन, लोहा, मैंगनीज़, तांबा	एन्ज़ाइम क्रिया एवं फसल गुणवत्ता में महत्वपूर्ण
भौतिक-रासायनिक गुण	pH एवं विद्युत चालकता (EC)	अम्लीयता, क्षारीयता एवं लवणीयता का आकलन
जैविक संकेतक	जैविक कार्बन (OC)	मृदा उर्वरता एवं स्वास्थ्य का प्रमुख संकेतक

मृदा स्वास्थ्य कार्ड एवं संतुलित उर्वरक उपयोग का जुड़ाव

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना एवं संतुलित उर्वरक उपयोग एक-दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। संतुलित उर्वरण का अर्थ है—फसल की वास्तविक आवश्यकता के अनुसार सभी आवश्यक पोषक तत्वों को उचित मात्रा एवं अनुपात में उपलब्ध कराना, ताकि न तो किसी पोषक तत्व की कमी हो और न ही आवश्यकता से अधिक प्रयोग किया जाए। यह तभी प्रभावी रूप से संभव है, जब किसान को अपने खेत की मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों की वर्तमान स्थिति की सही जानकारी हो। यही महत्वपूर्ण जानकारी मृदा स्वास्थ्य कार्ड के माध्यम से प्राप्त होती है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड के बिना संतुलित उर्वरण केवल एक सैद्धांतिक अवधारणा बनकर रह सकता है, क्योंकि किसान के पास अपने खेत की वास्तविक पोषक स्थिति जानने का वैज्ञानिक आधार सीमित रहता है। मृदा परीक्षण के माध्यम से किसानों को नाइट्रोजन, फॉस्फोरस एवं पोटैशियम जैसे प्रमुख पोषक तत्वों के साथ-साथ आवश्यक सूक्ष्म पोषक तत्वों की उपलब्धता एवं कमी की जानकारी प्राप्त होती है। इस जानकारी के आधार पर किसान केवल प्रमुख उर्वरकों का प्रयोग करने के बजाय उन पोषक तत्वों की पूर्ति पर भी ध्यान दे सकते हैं, जिनकी वास्तव में आवश्यकता है। इस प्रकार मृदा स्वास्थ्य कार्ड समग्र एवं संतुलित पोषक तत्व प्रबंधन को बढ़ावा देता है।

इस जुड़ाव को एक सरल उदाहरण से समझा जा सकता है। मान लीजिए किसी किसान के खेत की मिट्टी में फॉस्फोरस पहले से ही पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है, लेकिन किसान परंपरागत रूप से प्रत्येक वर्ष डीएपी, जो फॉस्फोरस का प्रमुख स्रोत है, की समान मात्रा का प्रयोग करता रहा है। मृदा स्वास्थ्य कार्ड के माध्यम से जब उसे मिट्टी में फॉस्फोरस की पर्याप्त उपलब्धता की जानकारी मिलती है, तो वह फॉस्फोरसयुक्त उर्वरक की मात्रा को आवश्यकता के अनुसार समायोजित कर सकता है और बची हुई राशि का उपयोग जिंक अथवा गंधक जैसे वास्तव में कमी वाले पोषक तत्वों की पूर्ति में कर सकता है। इस प्रकार कुल उर्वरक व्यय को अनावश्यक रूप से बढ़ाए बिना पोषक तत्वों का बेहतर संतुलन स्थापित किया जा सकता है तथा फसल की उत्पादकता एवं गुणवत्ता में सुधार की संभावना बढ़ती है।

इस प्रकार मृदा स्वास्थ्य कार्ड किसान को केवल यह नहीं बताता कि 'कितना उर्वरक डालना है', बल्कि यह समझने में भी सहायता करता है कि 'किस पोषक तत्व की वास्तव में आवश्यकता है'। यही जानकारी उर्वरकों के अधिक कुशल एवं विवेकपूर्ण उपयोग का आधार बनती है।

योजना के लाभ

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना को अपनाने से किसानों को प्राप्त होने वाले प्रमुख लाभ निम्न तालिका में संक्षेप में प्रस्तुत किए गए हैं:

लाभ	मुख्य प्रभाव
उर्वरक लागत में कमी	आवश्यकता से अधिक उर्वरक प्रयोग एवं खरीद में कमी
उपज एवं गुणवत्ता में सुधार	संतुलित पोषण से स्वस्थ फसल एवं बेहतर उत्पादन
सूक्ष्म पोषक तत्वों की पहचान	जिंक, बोरॉन आदि की कमी की समय पर पहचान
मृदा स्वास्थ्य निगरानी	नियमित परीक्षण से मृदा पोषक स्थिति में बदलाव की जानकारी
पर्यावरण संरक्षण	अनावश्यक उर्वरक प्रयोग से भूजल प्रदूषण एवं उत्सर्जन में कमी

मृदा स्वास्थ्य कार्ड का सबसे महत्वपूर्ण लाभ यह है कि यह उर्वरक प्रयोग को अनुमान-आधारित पद्धति से निकालकर मृदा परीक्षण-आधारित पद्धति की ओर ले जाता है। जब किसान अपनी मिट्टी की वास्तविक स्थिति के अनुसार उर्वरक प्रयोग करता है, तो अनावश्यक पोषक तत्वों के प्रयोग में कमी लाई जा सकती है। इससे उर्वरक लागत को नियंत्रित करने के साथ-साथ पोषक तत्वों के अधिक प्रभावी उपयोग में भी सहायता मिलती है।

संतुलित पोषण से पौधों को आवश्यक पोषक तत्व उचित मात्रा में उपलब्ध होते हैं, जिससे फसल की वृद्धि एवं विकास बेहतर हो सकता है। विशेष रूप से सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी की समय पर

पहचान से उन कमियों को दूर करने के लिए उचित प्रबंधन अपनाया जा सकता है। इसी प्रकार नियमित मृदा परीक्षण से समय के साथ मृदा की पोषक स्थिति में होने वाले बदलावों की निगरानी संभव होती है।

क्रियान्वयन में चुनौतियाँ

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के महत्व के बावजूद इसके व्यापक एवं प्रभावी क्रियान्वयन में कुछ व्यावहारिक चुनौतियाँ सामने आती हैं। प्रमुख चुनौतियाँ निम्नलिखित हैं:

1. प्रयोगशालाओं की सीमित क्षमता: किसानों की संख्या अधिक होने की तुलना में मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं की सीमित क्षमता के कारण नमूना परीक्षण एवं परिणाम प्राप्त करने में विलंब हो सकता है।

2. सिफारिशों के पालन में कमी: अनेक किसानों में मृदा स्वास्थ्य कार्ड की सिफारिशों को समझने एवं उन्हें वास्तविक खेत प्रबंधन में लागू करने के प्रति पर्याप्त जागरूकता नहीं होती।

3. दूरस्थ क्षेत्रों में सीमित पहुँच: दूरस्थ एवं पहाड़ी क्षेत्रों में मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं तक पहुँच एवं नमूना परिवहन की सुविधा सीमित हो सकती है।

4. तकनीकी जानकारी की जटिलता: कार्ड में दी गई वैज्ञानिक जानकारी एवं उर्वरक सिफारिशों को किसानों के लिए स्थानीय भाषा एवं सरल शब्दों में समझाना आवश्यक है।

इन चुनौतियों के समाधान के लिए मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं की संख्या एवं क्षमता बढ़ाना, मोबाइल मृदा परीक्षण इकाइयों का विस्तार, डिजिटल माध्यम से त्वरित रिपोर्ट उपलब्ध कराना तथा कृषि विज्ञान केन्द्रों एवं कृषि विस्तार तंत्र के माध्यम से निरंतर जागरूकता एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना आवश्यक है।

इसके साथ ही, किसानों को केवल कार्ड उपलब्ध कराना पर्याप्त नहीं है। उन्हें कार्ड में दी गई जानकारी को पढ़ने, समझने तथा फसल एवं खेत की परिस्थितियों के अनुसार उसका उपयोग करने के लिए व्यावहारिक प्रशिक्षण देना भी आवश्यक है। इससे मृदा परीक्षण के परिणामों को वास्तविक उर्वरक प्रबंधन से जोड़ने में सहायता मिलेगी।

भारतीय कृषि में प्रगति एवं भविष्य

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के अंतर्गत अब तक करोड़ों किसानों को मृदा स्वास्थ्य कार्ड उपलब्ध कराए जा चुके हैं तथा विभिन्न क्षेत्रों में इसके उपयोग से सकारात्मक परिणाम सामने आए हैं। जहाँ किसानों ने मृदा परीक्षण के आधार पर दी गई उर्वरक सिफारिशों को अपनाया है, वहाँ उर्वरक उपयोग में अधिक दक्षता के साथ उत्पादन लागत एवं फसल उत्पादकता में सुधार की संभावनाएँ देखी गई हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR), राज्य कृषि विश्वविद्यालयों एवं कृषि विभागों द्वारा इस दिशा में निरंतर अनुसंधान एवं तकनीकी प्रयास किए जा रहे हैं। डिजिटल मृदा मानचित्रण, मोबाइल एप्लिकेशन आधारित सिफारिशें एवं आधुनिक डेटा-आधारित तकनीकों को मृदा परीक्षण एवं उर्वरक प्रबंधन से जोड़ने के प्रयास योजना को अधिक प्रभावी एवं किसान-केंद्रित बना सकते हैं।

भविष्य में यदि प्रत्येक किसान अपने मृदा स्वास्थ्य कार्ड की सिफारिशों को समझकर उनका उचित पालन करे और मृदा परीक्षण की प्रक्रिया नियमित रूप से जारी रहे, तो संतुलित उर्वरण भारतीय कृषि में अपवाद के बजाय सामान्य कृषि प्रथा बन सकता है। इससे न केवल उर्वरक उपयोग की दक्षता एवं कृषि उत्पादकता में सुधार होगा, बल्कि मृदा की दीर्घकालिक उर्वरता एवं स्वास्थ्य को बनाए रखने में भी सहायता मिलेगी।

इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम यह है कि मृदा स्वास्थ्य कार्ड को केवल एक बार प्राप्त होने वाले दस्तावेज़ के रूप में न देखा जाए, बल्कि इसे मृदा प्रबंधन की एक सतत प्रक्रिया के रूप में विकसित किया जाए। किसान यदि अलग-अलग वर्षों के मृदा परीक्षण परिणामों को सुरक्षित रखकर उनकी तुलना करें, तो वे अपनी मिट्टी की उर्वरता में होने वाले बदलावों को बेहतर ढंग से समझ सकते हैं। इससे यह पहचानने में भी सहायता मिल सकती है कि कौन-सी उर्वरक एवं मृदा प्रबंधन पद्धतियाँ उनके खेत के लिए अधिक प्रभावी हैं।

मोबाइल एप्लिकेशन एवं डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से यदि किसानों को पिछले वर्षों के मृदा परीक्षण परिणामों की तुलना एवं उर्वरक सिफारिशों का रिकॉर्ड उपलब्ध कराया जाए, तो मृदा स्वास्थ्य की निरंतर निगरानी अधिक सरल एवं उपयोगी हो सकती है। इस प्रकार निरंतर परीक्षण, आँकड़ा-आधारित निर्णय एवं उचित उर्वरक प्रबंधन संतुलित उर्वरण को स्थायी कृषि व्यवहार में बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

निष्कर्ष

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना संतुलित उर्वरक उपयोग को व्यावहारिक रूप प्रदान करने का एक महत्वपूर्ण एवं प्रभावी माध्यम है। यह किसानों को अनुमान एवं परंपरा-आधारित उर्वरक प्रयोग से हटाकर मृदा परीक्षण एवं वैज्ञानिक आँकड़ों के आधार पर निर्णय लेने के लिए प्रेरित करती है। इसके माध्यम से किसान अपनी मिट्टी में उपलब्ध पोषक तत्वों की स्थिति को समझकर आवश्यकतानुसार उर्वरकों का चयन एवं प्रयोग कर सकते हैं।

संतुलित उर्वरण से अनावश्यक उर्वरक प्रयोग को कम करने, उत्पादन लागत को नियंत्रित करने, पोषक तत्वों के उपयोग की दक्षता बढ़ाने तथा मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने में सहायता मिल सकती है। साथ ही, सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी की पहचान एवं उनका उचित प्रबंधन फसल की वृद्धि, उत्पादकता एवं गुणवत्ता को बेहतर बनाने में महत्वपूर्ण हो सकता है।

आवश्यकता इस बात की है कि किसान नियमित रूप से मृदा परीक्षण कराएँ, मृदा स्वास्थ्य कार्ड में दी गई सिफारिशों को समझें और उन्हें अपने खेत की परिस्थितियों के अनुसार उचित रूप से लागू करें। दूसरी ओर, शासन एवं कृषि विस्तार तंत्र को मृदा परीक्षण सुविधाओं, डिजिटल सेवाओं, प्रशिक्षण एवं तकनीकी सहयोग की पहुँच को निरंतर बढ़ाना होगा।

यदि अनुसंधान संस्थान, शासन, कृषि विस्तार तंत्र एवं कृषक समुदाय मिलकर इस दिशा में समन्वित प्रयास करें, तो मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना भारतीय कृषि में संतुलित उर्वरण, बेहतर पोषक तत्व उपयोग एवं दीर्घकालिक मृदा स्वास्थ्य संरक्षण की दिशा में निर्णायक भूमिका निभा सकती है।

वास्तव में, मिट्टी की सही पहचान ही संतुलित एवं समृद्ध खेती की पहली सीढ़ी है।

♣♣♣

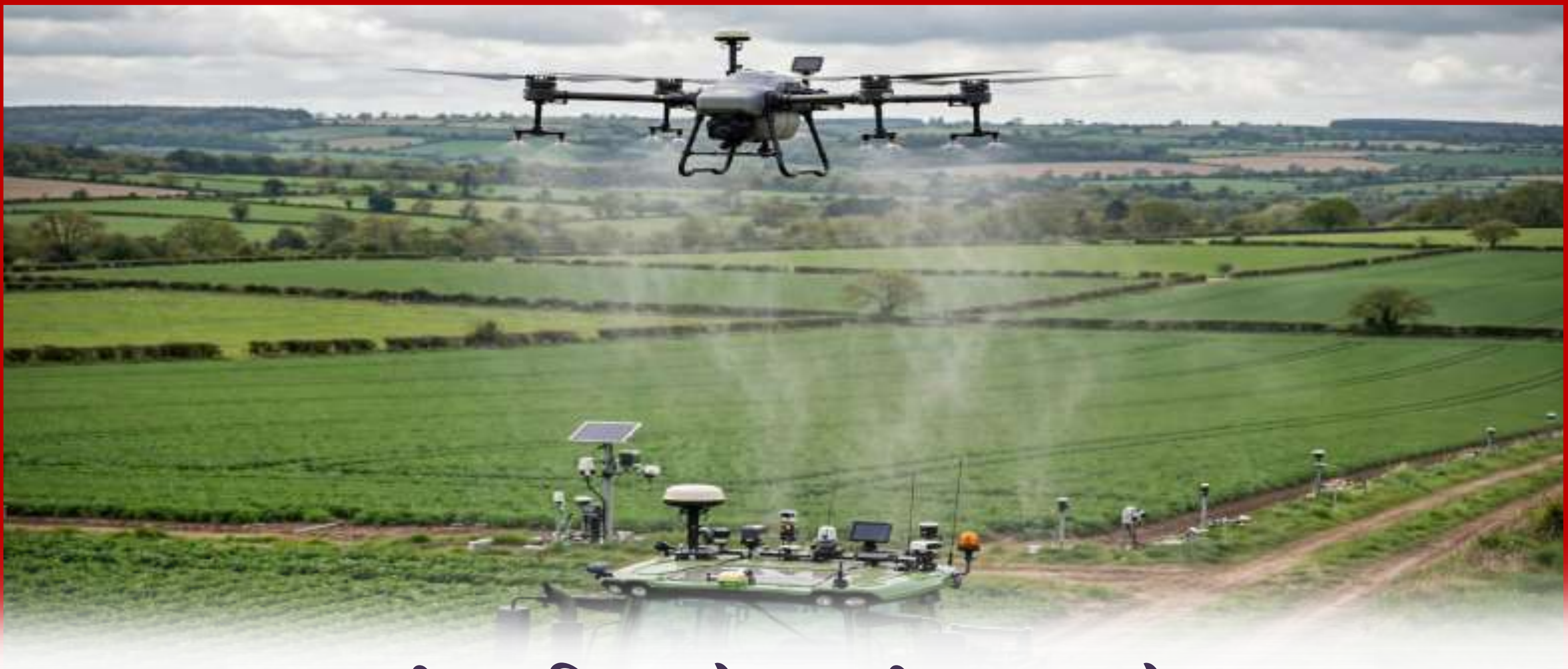

सटीक कृषि एवं ड्रोन तकनीक का उपयोग

ओमी नायक, गोविंद त्यागी, जया बिंदल, नेहा कुमारी
पीएच.डी. शोधार्थी, सस्य विज्ञान
सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ

परंपरागत कृषि में सामान्यतः पूरे खेत में एक समान मात्रा में बीज, उर्वरक, जल एवं अन्य कृषि आदानों का प्रयोग किया जाता है, जबकि वास्तविकता में एक ही खेत के विभिन्न भागों में मृदा उर्वरता, नमी एवं फसल की आवश्यकता में भिन्नता होती है। 'सटीक कृषि' (Precision Agriculture) इसी स्थानिक असमानता को वैज्ञानिक रूप से संबोधित करने वाली एक आधुनिक कृषि प्रबंधन पद्धति है, जिसमें GPS/GNSS, सेंसर, ड्रोन एवं डेटा विश्लेषण जैसी तकनीकों की सहायता से खेत के प्रत्येक भाग की वास्तविक आवश्यकता के अनुसार कृषि आदानों (inputs) का प्रयोग किया जाता है।

सटीक कृषि में ड्रोन विशेष रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। फसल निगरानी, कीटनाशक एवं उर्वरक छिड़काव, मृदा एवं फसल मानचित्रण तथा उपज आकलन जैसे कार्यों में ड्रोन तकनीक ने दक्षता, सटीकता एवं कार्य-गति में उल्लेखनीय सुधार किया है। प्रस्तुत लेख में सटीक कृषि की अवधारणा एवं इसके प्रमुख घटकों, कृषि में ड्रोन के विविध अनुप्रयोगों, इनके लाभ एवं व्यावहारिक चुनौतियों तथा भारतीय कृषि में इनकी संभावनाओं पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

मुख्य शब्दः सटीक कृषि, ड्रोन तकनीक, रिमोट सेंसिंग, परिवर्तनशील दर तकनीक, मृदा मानचित्रण, डिजिटल कृषि, टिकाऊ कृषि।

प्रस्तावना

परंपरागत कृषि पद्धति में किसान सामान्यतः पूरे खेत में एक समान मात्रा में बीज, उर्वरक, जल एवं कीटनाशकों का प्रयोग करते हैं, यह मानते हुए कि खेत की मिट्टी एवं फसल की आवश्यकता सभी स्थानों पर समान है। किंतु वास्तविकता इससे भिन्न है। एक ही खेत के विभिन्न भागों में मृदा उर्वरता, नमी धारण क्षमता, ढाल एवं जल निकास जैसी विशेषताओं में महत्वपूर्ण भिन्नता हो सकती है। इस असमानता की अनदेखी करने से कुछ स्थानों पर कृषि आदानों का अधिक तथा अन्य स्थानों पर कम प्रयोग हो सकता है, जिससे न तो संसाधनों का इष्टतम उपयोग हो पाता है और न ही फसल की पूर्ण उत्पादन क्षमता प्राप्त होती है।

'सटीक कृषि' इसी समस्या का एक वैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करती है। यह एक आधुनिक कृषि प्रबंधन दृष्टिकोण है, जिसमें उपग्रह आधारित स्थान-निर्धारण प्रणाली (GPS/GNSS), सेंसर, ड्रोन एवं डेटा विश्लेषण जैसी तकनीकों के माध्यम से खेत के विभिन्न भागों की वास्तविक आवश्यकता का आकलन किया जाता है तथा उसी के अनुरूप उचित मात्रा में कृषि आदानों का प्रयोग किया जाता है। इस दृष्टिकोण में ड्रोन तकनीक ने विशेष रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, क्योंकि यह बड़े कृषि क्षेत्र का कम समय में सर्वेक्षण, निगरानी एवं उपचार करने में सक्षम है।

यह तकनीकी परिवर्तन वैश्विक कृषि की एक व्यापक प्रवृत्ति का हिस्सा है, जिसे 'डिजिटल कृषि' (Digital Agriculture) अथवा 'कृषि 4.0' (Agriculture 4.0) के नाम से भी जाना जाता है। जिस प्रकार उद्योगों में स्वचालन एवं डेटा-आधारित निर्णयों ने उत्पादन प्रक्रियाओं को परिवर्तित किया है, उसी प्रकार कृषि क्षेत्र में सेंसर, ड्रोन एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित उपकरण खेती के तरीकों में महत्वपूर्ण परिवर्तन ला

रहे हैं। भारत जैसे विशाल कृषि क्षेत्र वाले देश के लिए यह परिवर्तन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यहाँ उपलब्ध संसाधनों की उपयोग-दक्षता एवं कृषि उत्पादकता में सुधार की व्यापक संभावनाएँ हैं।

सटीक कृषि क्या है?

सटीक कृषि का मूल सिद्धांत है—**'सही स्थान पर, सही समय पर और सही मात्रा में'** कृषि आदानों का प्रयोग करना। इसके लिए सर्वप्रथम खेत की मिट्टी, फसल एवं पर्यावरणीय परिस्थितियों से संबंधित विस्तृत आँकड़े (डेटा) एकत्र किए जाते हैं। इसके बाद इन आँकड़ों का विश्लेषण कर यह निर्धारित किया जाता है कि खेत के किस भाग में किस कृषि आदान की कितनी मात्रा आवश्यक है। अंततः प्राप्त जानकारी के आधार पर उपयुक्त उपकरणों एवं तकनीकों की सहायता से आदानों का सटीक प्रयोग किया जाता है।

चित्र 1: सटीक कृषि के प्रमुख घटक

इस पूरी प्रक्रिया में अनेक तकनीकें समन्वित रूप से कार्य करती हैं। GPS/GNSS खेत में सटीक भौगोलिक स्थिति की जानकारी प्रदान करता है; ड्रोन एवं रिमोट सेंसिंग हवाई सर्वेक्षण के माध्यम से फसल एवं मृदा की स्थिति से संबंधित चित्र एवं आँकड़े उपलब्ध कराते हैं; मृदा एवं फसल सेंसर वास्तविक समय में नमी, तापमान एवं पोषक तत्वों की स्थिति का आकलन करते हैं; जबकि परिवर्तनशील दर तकनीक (Variable Rate Technology; VRT) उपलब्ध जानकारी के आधार पर खेत के अलग-अलग भागों में आवश्यकता के अनुसार कृषि आदानों की मात्रा को समायोजित करने में सहायता करती है।

सटीक कृषि की प्रमुख तकनीकें

सटीक कृषि में उपयोग होने वाली प्रमुख तकनीकों एवं उनकी भूमिका को निम्न तालिका में संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है:

तकनीक	मुख्य कार्य	कृषि में उपयोग
GPS/GNSS	सटीक भौगोलिक स्थान निर्धारण	मशीन मार्गदर्शन एवं खेत मानचित्रण
रिमोट सेंसिंग/ड्रोन	हवाई चित्र एवं डेटा संग्रह	फसल निगरानी एवं वृद्धि आकलन
मृदा/फसल सेंसर	नमी एवं पोषक स्थिति का मापन	सिंचाई एवं उर्वरक प्रबंधन
परिवर्तनशील दर तकनीक (VRT)	स्थान-विशेष आदान प्रयोग	उर्वरक, बीज एवं कीटनाशक का सटीक प्रयोग
डेटा विश्लेषण/AI	आँकड़ों का विश्लेषण एवं सिफारिश	उपज पूर्वानुमान एवं निर्णय समर्थन

कृषि में ड्रोन तकनीक का उपयोग

सटीक कृषि में प्रयुक्त विभिन्न तकनीकों में ड्रोन ने पिछले कुछ वर्षों में तेजी से लोकप्रियता प्राप्त की है, क्योंकि यह बड़े कृषि क्षेत्र का कम समय में सटीक सर्वेक्षण, निगरानी एवं उपचार करने में सक्षम है। कृषि ड्रोन में लगे उच्च-रिज़ोल्यूशन कैमरे, बहु-वर्णक्रमीय (Multispectral) सेंसर एवं GPS/GNSS प्रणाली मिलकर फसल की स्थिति से संबंधित विस्तृत जानकारी प्रदान करते हैं, जिसे केवल पारंपरिक खेत निरीक्षण से प्राप्त करना अपेक्षाकृत कठिन एवं श्रमसाध्य हो सकता है।

बहु-वर्णक्रमीय सेंसर विशेष रूप से उपयोगी हैं, क्योंकि ये पौधों से परावर्तित प्रकाश की उन तरंगदैर्ध्य श्रेणियों को भी दर्ज कर सकते हैं जिन्हें मानव आँख प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख सकती। प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण से फसल में जल-तनाव, पोषक तत्वों की कमी अथवा रोग एवं कीट से प्रभावित क्षेत्रों की प्रारंभिक पहचान में सहायता मिल सकती है। इससे किसान समय रहते आवश्यक सुधारात्मक उपाय अपना सकते हैं।

ड्रोन तकनीक की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता इसकी गति एवं बड़े क्षेत्र में उपयोग की क्षमता है। जहाँ बड़े खेत का पैदल निरीक्षण करने में काफी समय एवं श्रम लग सकता है, वहीं ड्रोन उसी क्षेत्र का सर्वेक्षण अपेक्षाकृत कम समय में कर सकता है और साथ ही विस्तृत स्थान-विशिष्ट आँकड़े उपलब्ध करा सकता है। इसी प्रकार छिड़काव कार्य में भी ड्रोन पारंपरिक हाथ अथवा पीठ पर लगाए जाने वाले स्प्रेयर की तुलना में कम समय में बड़े क्षेत्र को कवर करने में सक्षम हैं। आवश्यकता के अनुसार सटीक एवं समान छिड़काव से समय, श्रम एवं संसाधनों के उपयोग में सुधार किया जा सकता है।

ड्रोन के प्रमुख कृषि अनुप्रयोग

कृषि में ड्रोन के प्रमुख अनुप्रयोगों को निम्न तालिका में संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है:

अनुप्रयोग	मुख्य उपयोग एवं लाभ
छिड़काव (Spraying)	उर्वरक, कीटनाशक एवं नैनो उर्वरकों का सटीक एवं समान छिड़काव
फसल निगरानी	रोग, कीट एवं जल-तनाव की प्रारंभिक पहचान
मृदा एवं फसल मानचित्रण	मृदा एवं फसल विविधता का डिजिटल मानचित्रण
सिंचाई प्रबंधन	नमी एवं जल-तनाव वाले क्षेत्रों की पहचान
उपज आकलन	फसल आँकड़ों के आधार पर कटाई-पूर्व उपज अनुमान
बीजारोपण	उपयुक्त प्रणालियों द्वारा बीज अथवा बीज-कैप्सूल का लक्षित प्रयोग

इन अनुप्रयोगों में छिड़काव कृषि ड्रोन का एक महत्वपूर्ण एवं व्यावहारिक उपयोग है, विशेषकर जलभराव वाले धान के खेतों तथा ऊँची एवं सघन फसलों में, जहाँ पारंपरिक विधियों से छिड़काव करना कठिन एवं समय-साध्य हो सकता है। ड्रोन की सहायता से ऐसे क्षेत्रों में कम समय में लक्षित एवं समान छिड़काव किया जा सकता है, जिससे श्रम एवं समय की बचत के साथ कृषि कार्यों की दक्षता में सुधार संभव है।

लाभ

सटीक कृषि एवं ड्रोन तकनीक के एकीकृत उपयोग से कृषि उत्पादन प्रणाली में संसाधनों के अधिक दक्ष, लक्षित एवं वैज्ञानिक प्रबंधन को बढ़ावा मिलता है। इसके प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं:

1. कृषि आदानों का इष्टतम उपयोग: उर्वरक, बीज, कीटनाशक एवं सिंचाई जल का आवश्यकता-आधारित एवं लक्षित उपयोग संभव होने से इनपुट लागत में कमी तथा संसाधन उपयोग दक्षता में वृद्धि होती है।

2. फसल समस्याओं की शीघ्र पहचान: ड्रोन आधारित उच्च-रिज़ॉल्यूशन एवं बहु-वर्णक्रमीय इमेजिंग द्वारा फसल में पोषक तत्वों की कमी, जल तनाव, रोग एवं कीट प्रकोप जैसी समस्याओं की प्रारंभिक अवस्था में पहचान की जा सकती है, जिससे समय पर सुधारात्मक उपाय करना संभव होता है।

3. श्रम एवं समय की बचत: बड़े एवं असमान भू-भाग वाले खेतों में फसल निगरानी एवं लक्षित छिड़काव जैसे कार्यों को कम समय एवं अपेक्षाकृत कम श्रम के साथ पूरा किया जा सकता है।

4. रासायनिक उपयोग में कमी: केवल प्रभावित अथवा आवश्यकता वाले क्षेत्रों में लक्षित छिड़काव किए जाने से रसायनों के अनावश्यक उपयोग में कमी आती है। इससे उत्पादन लागत घटने के साथ-साथ मृदा, जल एवं जैव विविधता पर संभावित प्रतिकूल प्रभावों को कम करने में सहायता मिलती है।

5. किसानों की सुरक्षा: ड्रोन आधारित छिड़काव से किसानों एवं कृषि श्रमिकों का रसायनों के साथ प्रत्यक्ष संपर्क कम होता है, जिससे रासायनिक जोखिम को कम करने में सहायता मिलती है।

6. डेटा-आधारित निर्णय-निर्माण: ड्रोन एवं अन्य सेंसरों से प्राप्त स्थानिक एवं समय-आधारित डेटा के विश्लेषण से किसान फसल प्रबंधन संबंधी अधिक वैज्ञानिक एवं आवश्यकता-आधारित निर्णय ले सकते हैं। इससे दीर्घकालिक फसल योजना, संसाधन प्रबंधन एवं जोखिम न्यूनीकरण को मजबूती मिलती है।

7. उत्पादन एवं संसाधन दक्षता में सुधार: फसल की स्थानिक परिवर्तनशीलता को ध्यान में रखकर प्रबंधन करने से उपलब्ध संसाधनों का बेहतर उपयोग तथा कृषि उत्पादन प्रणाली की समग्र दक्षता में सुधार की संभावना बढ़ती है।

चुनौतियाँ एवं समाधान

सटीक कृषि एवं ड्रोन तकनीक में व्यापक संभावनाएँ होने के बावजूद, इनके बड़े पैमाने पर एवं समावेशी अपनाने के मार्ग में आर्थिक, तकनीकी, संस्थागत एवं नियामकीय चुनौतियाँ मौजूद हैं।

1. उच्च प्रारंभिक लागत: ड्रोन, कैमरा, सेंसर, सॉफ्टवेयर तथा डेटा-प्रसंस्करण प्रणालियों की प्रारंभिक लागत छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए अपेक्षाकृत अधिक हो सकती है। इसका प्रभावी समाधान कस्टम हायरिंग केन्द्रों, ड्रोन सेवा प्रदाताओं तथा किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) के माध्यम से सेवा-आधारित मॉडल को बढ़ावा देना है। इससे किसानों को स्वयं महँगे उपकरण खरीदने की आवश्यकता नहीं होगी।

2. तकनीकी कौशल एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता: ड्रोन संचालन के साथ-साथ उड़ान योजना, इमेजिंग, डेटा प्रसंस्करण एवं प्राप्त सूचनाओं की कृषि-आधारित व्याख्या के लिए प्रशिक्षित मानव संसाधन आवश्यक है। इसके लिए कृषि विश्वविद्यालयों, कृषि विज्ञान केन्द्रों एवं प्रशिक्षण संस्थानों के माध्यम से नियमित ड्रोन संचालन, डिजिटल कृषि एवं डेटा विश्लेषण प्रशिक्षण कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

3. नियामकीय अनुपालन: ड्रोन संचालन के लिए निर्धारित उड़ान नियमों, सुरक्षा प्रोटोकॉल एवं अन्य नियामकीय प्रावधानों का पालन आवश्यक है। अतः ड्रोन उपयोगकर्ताओं एवं सेवा प्रदाताओं को संबंधित नियमों एवं अनुमतियों के संबंध में पर्याप्त जानकारी एवं प्रशिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।

4. छोटे एवं खंडित खेत: भारत में भूमि जोतों का छोटा एवं बिखरा हुआ स्वरूप कई परिस्थितियों में ड्रोन तकनीक की व्यक्तिगत आर्थिक व्यवहार्यता को सीमित कर सकता है। इस समस्या के समाधान के लिए सामूहिक सेवा मॉडल, FPO आधारित ड्रोन उपयोग तथा स्थानीय स्तर पर ड्रोन सेवा केन्द्रों का विकास अधिक प्रभावी हो सकता है।

5. डेटा प्रबंधन एवं व्याख्या: ड्रोन से प्राप्त उच्च मात्रा के डेटा को उपयोगी कृषि सलाह में परिवर्तित करने के लिए उपयुक्त सॉफ्टवेयर, विशेषज्ञता एवं डिजिटल अवसंरचना की आवश्यकता होती है। अतः ड्रोन तकनीक को केवल उड़ान एवं छवियों तक सीमित न रखकर डेटा से निर्णय तक की पूर्ण प्रणाली के रूप में विकसित किया जाना आवश्यक है।

इस प्रकार, तकनीकी प्रशिक्षण, सामूहिक उपयोग, कस्टम हायरिंग मॉडल, वित्तीय सहायता, डिजिटल अवसंरचना तथा संस्थागत सहयोग के समन्वित विकास से इन चुनौतियों को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य

भारत जैसे विविध कृषि-जलवायु एवं छोटे-सीमांत कृषक प्रधान देश में सटीक कृषि एवं ड्रोन तकनीक का महत्व तेजी से बढ़ रहा है। देश में कृषि क्षेत्र में ड्रोन के उपयोग को प्रोत्साहित करने के लिए सरकारी स्तर पर विभिन्न पहल, प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं सहायता तंत्र विकसित किए जा रहे हैं। इनका उपयोग मुख्यतः फसल निगरानी, क्षेत्र सर्वेक्षण, पोषक तत्व एवं जल तनाव की पहचान तथा लक्षित कृषि-रसायन एवं तरल उर्वरक छिड़काव जैसे कार्यों में किया जा रहा है।

कृषि विज्ञान केन्द्रों, कृषि विश्वविद्यालयों, किसान उत्पादक संगठनों तथा अन्य संस्थागत इकाइयों के माध्यम से ड्रोन आधारित कृषि सेवाओं को किसानों तक पहुँचाने की संभावनाएँ बढ़ी हैं। सेवा-आधारित अथवा कस्टम हायरिंग मॉडल विशेष रूप से छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए उपयोगी हो सकता है, क्योंकि इसमें किसान को महँगे उपकरणों में व्यक्तिगत निवेश करने के बजाय आवश्यकता के अनुसार सेवा प्राप्त करने की सुविधा मिलती है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR), कृषि विश्वविद्यालयों एवं अन्य अनुसंधान संस्थानों द्वारा भी सटीक कृषि, रिमोट सेंसिंग, सेंसर आधारित कृषि एवं ड्रोन प्रौद्योगिकी के विभिन्न पहलुओं पर अनुसंधान एवं प्रौद्योगिकी विकास किया जा रहा है। इन प्रयासों का उद्देश्य फसल निगरानी को अधिक वैज्ञानिक बनाने, कृषि आदानों के दक्ष उपयोग को बढ़ावा देने तथा जलवायु एवं उत्पादन संबंधी जोखिमों के प्रभाव को कम करने की दिशा में तकनीकी समाधान विकसित करना है।

भारत में इस तकनीक के व्यापक विस्तार के लिए केवल उपकरणों की उपलब्धता पर्याप्त नहीं है, बल्कि किफायती सेवा मॉडल, प्रशिक्षित मानव संसाधन, स्थानीय स्तर पर तकनीकी सहायता, विश्वसनीय डेटा विश्लेषण तथा प्रभावी विस्तार तंत्र का विकास भी आवश्यक है। यदि ड्रोन तकनीक को किसानों की वास्तविक आवश्यकताओं एवं स्थानीय कृषि प्रणालियों के अनुरूप विकसित किया जाए, तो यह कृषि उत्पादन की दक्षता एवं स्थिरता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

विशेष रूप से युवा कृषि स्नातकों एवं ग्रामीण उद्यमियों के लिए ड्रोन आधारित कृषि सेवा एक उभरता हुआ व्यवसायिक अवसर है। प्रशिक्षित सेवा प्रदाता किसानों को किराये अथवा सेवा-शुल्क के आधार पर फसल निगरानी, सर्वेक्षण एवं अनुमत कृषि-छिड़काव जैसी सेवाएँ उपलब्ध करा सकते हैं। इससे किसानों के लिए तकनीक की पहुँच बढ़ने के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों में तकनीकी एवं उद्यमिता आधारित रोजगार के अवसर भी विकसित हो सकते हैं।

इस प्रकार, ड्रोन तकनीक का विस्तार केवल कृषि उत्पादकता एवं संसाधन दक्षता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह ग्रामीण उद्यमिता, सेवा क्षेत्र के विकास एवं कृषि के डिजिटल रूपांतरण को भी गति प्रदान कर सकता है। हालांकि, इसके लिए तकनीक को किसानों की आर्थिक क्षमता, जोत के आकार, फसल प्रणाली एवं स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप अपनाना आवश्यक होगा।

निष्कर्ष

सटीक कृषि एवं ड्रोन तकनीक भारतीय कृषि के आधुनिकीकरण एवं डिजिटल रूपांतरण की दिशा में महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकीय साधन के रूप में उभर रही हैं। **"सही स्थान पर, सही समय पर और सही मात्रा में"** कृषि आदानों के उपयोग पर आधारित सटीक कृषि दृष्टिकोण संसाधन उपयोग दक्षता बढ़ाने, उत्पादन लागत को नियंत्रित करने तथा फसल प्रबंधन को अधिक वैज्ञानिक बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। ड्रोन तकनीक ने विशेष रूप से फसल निगरानी, क्षेत्र सर्वेक्षण एवं लक्षित छिड़काव जैसे कार्यों को अधिक तीव्र, सटीक एवं अपेक्षाकृत सुरक्षित बनाने की क्षमता प्रदर्शित की है।

हालाँकि, इस तकनीक का वास्तविक प्रभाव इसके व्यापक एवं समावेशी अपनाने पर निर्भर करेगा। उच्च प्रारंभिक लागत, तकनीकी प्रशिक्षण की आवश्यकता, छोटे एवं खंडित खेत, डेटा विश्लेषण की जटिलता तथा नियामकीय अनुपालन जैसी चुनौतियों को प्रभावी संस्थागत एवं व्यावसायिक मॉडलों के माध्यम से संबोधित करना आवश्यक है। कस्टम हायरिंग केन्द्र, FPO आधारित सामूहिक उपयोग,

ड्रोन सेवा प्रदाता, प्रशिक्षण कार्यक्रम एवं उपयुक्त वित्तीय सहायता इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

भविष्य में ड्रोन, रिमोट सेंसिंग, सेंसर, कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं डेटा विश्लेषण जैसी तकनीकों के एकीकरण से कृषि निर्णय-निर्माण और अधिक सटीक एवं पूर्वानुमान-आधारित हो सकता है। विशेष रूप से छोटे एवं सीमांत किसानों तक सेवा-आधारित मॉडल के माध्यम से इन तकनीकों की पहुँच सुनिश्चित करना भारतीय कृषि के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होगा।

अतः सटीक कृषि एवं ड्रोन तकनीक को केवल एक आधुनिक उपकरण के रूप में नहीं, बल्कि डेटा-आधारित, संसाधन-कुशल एवं टिकाऊ कृषि प्रबंधन प्रणाली के रूप में देखा जाना चाहिए। अनुसंधान संस्थानों, सरकार, कृषि विश्वविद्यालयों, निजी क्षेत्र, FPOs एवं कृषक समुदाय के समन्वित प्रयासों से इन तकनीकों का प्रभावी विस्तार संभव है। उचित नीति, प्रशिक्षण एवं आर्थिक मॉडल के साथ सटीक कृषि एवं ड्रोन तकनीक भारतीय कृषि को अधिक दक्ष, लाभकारी, टिकाऊ एवं भविष्य के लिए सक्षम बनाने में निर्णायक योगदान दे सकती है।

♣♣♣

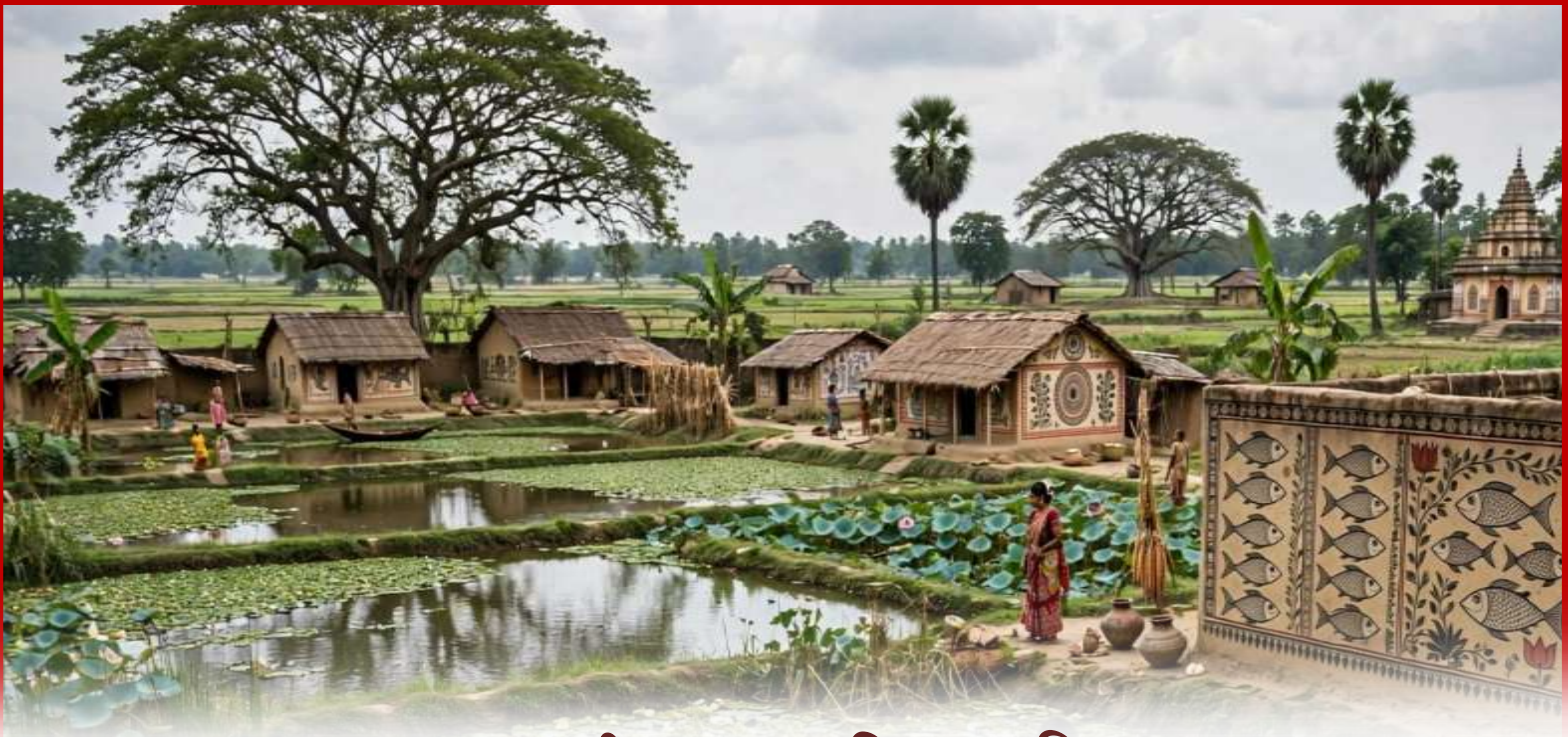

मधुबनी: मखाना की मातृभूमि

डा॰ सुनील कुमार मंडल
सहायक प्राध्यापक
क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, झंझारपुर (डा॰ राजेन्द्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार)

आज मखाना न केवल भारत में बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी एक अलौकिक के रूप में जाना जाता है। कई स्वास्थ्य लाभों के लिए प्रसिद्ध मखाना में प्रोटीन, फाइवर, कैल्सियम, पोटेशियम, फास्फोरस इत्यादि पोषक तत्वों से भरपुर होते हैं। हाल के दिनों में ही वैश्विक स्तर पर लोगों ने इस सुपरफुड के महत्व को पहचाना है। भारत, विश्व के कुल मखाना उत्पादन का लगभग 90 प्रतिशत साझा करता है और बिहार देश का लगभग 80-85 प्रतिशत मखाना का उत्पादन करता है, जिसमें मधुबनी जिले का महत्वपूर्ण योगदान (20-40 प्रतिशत) है। इसलिए आज ''मिथिला मखाना'' के नाम से प्रसिद्ध है। सरकार ने भी मिथिला मखाना के नाम से जी.आई. टैग प्रदान किया है।

मधुवनी का ऐताहासिक पृष्ठभूमि:

बहुत कम लोग जानते है कि मखाने (काले हीरे) की उत्पत्ति लगभग 200 वर्ष पूर्व बिहार के मधुबनी नामक एक छोटे से क्षेत्र में हुई थी। 18वीं शताब्दी में दरभंगा को राजा संरक्षण में बहुत फली-फूली। तब से मखाना भारतीय संस्कृति, भोजन और आध्यात्मिकता का अभिन्न अंग रहा है, जिसका उल्लेख चरक संहिता जैसे प्राचीन आर्युवेदिक ग्रंथों में भी मिलता है।

आज मखाना एक पारंपरिक फसल से विकसित होकर विश्व स्तर पर मान्यता प्राप्त सुपरफुड बन गया हैं। बिहार आज भी इसकी खेती का मुख्य केन्द्र बना हुआ है।

मधुबनी का भौगोलिक और जलवायु अनुकूलता:

- **उर्वरा भूमि:** आमतौर पर भारत के उष्णकंटिबंधीय और उपोष्णकंटिबंधीय क्षेत्रों में उगाया जाता है। बिहार के मधुबनी जिले की उपजाऊ भूमि मखाना की खेती के लिए अतिउपयुक्त है।
- **जलवायु:** मधुबनी जिले की जलवायु आस-पास के जिलों की तुलना में ठंडी और नम रहती है जो मखाना फसल की विकास के लिए सर्वोत्तम है।
- **जल संसाधन:** मधुबनी जिला जल का मुख्य स्थान है और जिले में कई बारहमासी नदियां और जलभराव वाले क्षेत्र हैं जो मखाना उत्पादन के लिए आदर्श परिस्थितियां प्रदान करते हैं।

सरकारी तालाब: 3000 (2,051.50 हे. भूमि)
निजी तालाब: 2500
पर्याप्त चैर भूमि (नीचे इकाके): 10,000 (विभिन्न रिर्पोटों के अनुसार मिश्रित संख्या)
प्रमुख नदिया: 12 से अधिक बारहमासी और गैर बारहमासी नदियां।

इसके अतिरिक्त जिले में कई गड्ढ़े, झीले और अन्य जल भराव वाले क्षेत्र पाये जाते हैं जो मखाना उत्पादन के अनुकूल वातावरण उत्पन्न करते है और आगे विस्तार की संभावना प्रदान करती है।

खेती की प्रक्रिया

आज भी मधुवनी के अधित्तर किसान पारम्परिक तरीकों का ही इस्तेमाल करते हैं, जो तालाबों, गड्ढ़ों, बड़े नालियों, झीलों आदि में मखाना का उत्पादन करते हैं। परन्तु विगत कुछ वर्षों से धान के खेतों में भी वैज्ञानिक तरीकों को बढ़ावा दिया जा रहा है और यह तकनीक किसानों के लिए समय बचत के साथ अधिक उत्पादन भी देता है।

मखाना उत्पादन तकनीक: मखाना की खेती या तो जल भराव वाले क्षेत्रों में जिसकी 4 से 6 फीट गहरी हो या फिर खेतों में अन्य फसलों की भांति इसकी खेती की जाती है।

(क) तालाब प्रणाली: यह मखाना की खेती करने की परम्परागत प्रणाली है। इस प्रणाली में बीज को बोने की आवश्यकता नहीं होती है, क्योंकि पूर्व वर्ष के तालाब मे बचे बीज आगामी वर्ष के लिए बीज का काम करते हैं। जबकि खेत प्रणाली में मखाना के बीज को सीधी खेतों मे बोया जाता है अथवा धान के फसल की भांति नर्सरी से तैयार पौधों की रोपनी की जाती है।

परम्परागत विधि मे मखाना के तालाबों में मांगुर, सींधीं, गाई आदि जंगली मछलियां बाढ़ के पानी के साथ तालाबों में प्रवेश कर जाते हैं जिसे किसान अतिरिक्त फसल के रूप में प्राप्त करते हैं।

- **सीधी बुआई:** इस विधि में 90 किलोग्राम स्वस्थ्य मखाना बीज को नये तालाब में, जबकि पुराने तालाब में एक तिहाई (30 किलोग्राम बीज) दिसम्बर के महीने में हाथों से विखेर देते हैं। बीज को बोने के 35 से 40 दिन बाद पानी के अन्दर बीज का अंकुरण शुरू हो जाता है तथा फरवरी क अंत या मार्च के शुरूआत में मखाना के पौधे जल की उपरी सतह पर निकल आते हैं। इस अवस्था मे पौधे से पौधे एवं पक्ति से पक्ति के बीच की दूरी क्रमशः 1 मीटर और 1.25 मीटर बनाये रखने के लिए अतिरिक्त पौधों को निकाल दिया जाता है।
- **रोपाई विधि:** स्वस्थ एवं नवविकसित पौधों की रोपाई मार्च से अप्रैल के महीने में पौधे से पौधे एवं कतार से कतार की दूरी क्रमशः 1 मीटर ग 1.25 मीटर पर की जाती है। रोपाई के लगभग दो महीने के बाद चमकीले बैंगनी रंग के एकल फूल जहाँ-तहाँ से निकलना शुरू हो जाता है। फूल खिलने के 35-40 दिनों के बाद फल पूरी तरह से कंटीले प्रकृति के होते हैं। मखाना के फल पूरी तरह से परिपक्व हो जाने के पश्चात् गुद्धेदार फल फटना शुरू हो जाते हैं। फल फटने के बाद पानी की उपरी सतह पर तैरते हैं तथा 2 से 3 दिन बाद तालाब की तलहटी पर बैठना शुरू हो जाते हैं। फूलों के विकसित होने एवं फलों के फटने की प्रक्रिया सितम्बर के महीने तक चलती रहती है। सितम्बर के अन्त या अक्टूबर महीने में स्थानीय औजार की सहायता से जलाशय की सतह में 5 से 30 सेंटीमीटर की गहराई में बैठे बीजों को कुशल श्रमिकों की सहायता से जमा किया जाता है। फसल कटाई के 2 से 3 महीने के बाद जलाशय में शेष बचे लगभग एक तिहाई बीज जो एकत्रित करते समय छुट जाते हैं तो अगामी फसल के लिए अंकुरित होना शुरू कर देते हैं।

(ख) खेत प्रणाली: यह मखाना की खेती करने की नयी पद्धति हैं, जिसे मखाना अनुसंधान संस्थान, दरभंगा के द्वारा विकसित किया गया है। इस प्रणाली के द्वारा मखाना की खेती 1.0 - 1.5 फीट तक पानी से भरे कृषि भूमि में की जाती है (यह मखाना की खेती का बहुत ही सरल विधि है जिसमें एक ही खेत मे मखाना के साथ-साथ धान एवं अन्य फसलों को उपजाने का अवसर मिलता है) मखाना के पौधों को सर्वप्रथम दिसम्बर-जनवरी के महीनों के बीच नर्सरी मे तैयार किया जाता है। रोपनी प्रायः फरवरी के अंतिम सप्ताह से लेकर अप्रैल के तीसरे सप्ताह तक की जा सकती है। जो मुख्यतः खेत की उपलब्धता एवं नर्सरी मे पौधों की स्थिति पर निर्भर करता है। इस विधि के द्वारा मखाना की खेती का समय घटकर मात्र चार महीने रह जाता है।

- **नर्सरी की तैयारी:** मखानो की नर्सरी तैयार करने के लिए दो से तीन गहरी जुताई की आवश्यकता होती है। विचड़े की सही विकास के लिए रासायनिक खाद नेत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश क्रमशः 100: 60: 40 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर के अनुपात में डालना चाहिए। इसके बाद नर्सरी का समलीकरण कर दो फीट ऊँचा बांध चारों तरफ बनाना चाहिए। उसके बाद नर्सरी में 1.5 फीट पानी डाल कर मखाना के बीज को दिसम्बर महीनें में बुआई करना चाहिए। इसके लिए लगभग 20 किलोग्राम मखाना का स्वस्थ बीज 500 वर्गमीटर क्षेत्र प्रति हेक्टेयर के लिए होती है। अंतिम फरवरी से मार्च तक पौधे रोपाई के लिए तैयार हो जाता है। पूर्ण फसल अवधि तक 1.0-1.5 फीट पानी खेतों में उपलब्ध रहना चाहिए।
- **फसल की कटाई:** मखाना के संदर्भ में फसल की कटाई का मतलब तालाबों या खेतों की सतह पर एकत्र बीजों का एकीकरण करना है।

उत्पादन (बीज) तालाब प्रणाली: 1.4 से 2.2 टन/हेक्टेयर।

खेत प्रणाली: 2.6 से 3.0 टन/हेक्टेयर।

मधुवनी का उत्पादन एवं क्षेत्रफल:

मधुवनी जिले के लगभग 4500 हेक्टेयर क्षेत्रफल में कुल मखाना का उत्पादन 1800 मीट्रिक टन प्रति वर्ष होता है, जबकि बिहार राज्य के लगभग 15000 हेक्टेयर क्षेत्रफल में 35000 मीट्रिक टन मखाना

बीज का उत्पादन प्रतिवर्ष होता है। इस प्रकार मधुवनी जिला राज्य के कुल उत्पादन में लगभग 20-40 प्रतिशत योगदान देता है।

- ❖ **प्रमुख उत्पादक क्षेत्र:** मधुबनी जिले के रहिका, अंघरातरही, पंडौल, खजौली, झंझारपुर, लदनिया, राजनगर और भिसकी क्षेत्र शामिल है।
- ❖ **सामुदायिक सहयोग:** मधुबनी जिले के कई क्षेत्रों में मखाना की खेती बहुत फलती-फूलती है, जो ऐतिहासिक रूप से मिथिलांचल क्षेत्र की पारम्परिक कृषि तकनीकों से जुड़ा हुआ है।

भारत में मखाना की खेती का केन्द्र होने के नाते (जो दुनिया का 90 प्रतिशत मखाना का उत्पादन करता है), मधुबनी का उत्पादन काफी हद तक पारम्परिक, गहन और समुदाय-संचालित तरीकों पर आधारित है।

- ❖ **आर्थिक स्थिति:** मधुबनी की अजीविका का मुख्य स्रोत कृषि है। मखाना की खेती इस जिले की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देती है। मखाना के अतिरिक्त मधुबनी जिले में मत्स्य पालन, हस्तकरघा, हस्तशिल्पी और मधुबनी चित्रकला जैसे उद्योग भी है। यहाँ आम, लींचीं, गन्ना, धान इत्यादि की भी खेती होती है। चीनी, रेशम, कपास, तम्बाकू आदि का व्यापार के लिए मधुबनी, नेपाल का एक महत्वपूर्ण व्यवसायिक केन्द्र भी है। फिर भी मखाना मधुवनी जिला के आय का मुख्य स्रोत है।
- ❖ **रोजगार:** मखाना का यह क्षेत्र हजारों किसानों और मजदूरों/श्रमिकों के लिए आजीविका का मुख्य साधन है।

आर्थिक महत्व और लाभ:

मखाना एक उच्च मूल्य वाली फसल है, जिससे किसानों को अच्छी आमदनी होती है। एक एकड़ क्षेत्र में मखाना की खेती करने से अनुमानित 1.8 लाख से 3.0 लाख रूपये तक शुद्ध आय मिल सकता है। मखाना का शुद्ध लाभ ग्रेडिंग और उसकी गुणवत्ता पर भी निर्भर करता है।

प्रसंस्करण इकाईया: मधुबनी के शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में मखाना प्रसंस्करण की कई बड़ी इकाईयां स्थापित की गयी है, जहाँ मखाने की ग्रेडिंग, रोस्टींग और पैकेजिंग की जाती है।

ब्रांडिंग: मखाना को 2022 में ''मिथिला मखाना'' नाम से जी.आई. टैग मिला है जो इसकी गुणवत्ता को प्रमाणित करते है और मधुबनी के मखाने की अंतर्राष्ट्रीय पहचान बढ़ी है।

मधुबनी का मखाना न केवल स्थानीय बाजारों में, बल्कि रिलायंस मार्ट जैसे बड़े रिटेल स्टोर और अंतर्गराष्ट्रीय स्तर पर भी लोकप्रिय हुई है।

प्रमुख उत्पाद: मखाने से विस्किट, ब्रेड, रोस्टेड मखाना (लावा) और नमकीन जैसे उत्पाद तैयार किये जाते हैं। रोस्टेड मखाना (पाप मखाना) को ''सफेद सोना'' भी कहा जाता है।

चुनौतियां और श्रम:

- ✓ **कठिन परिश्रम:** मखाना की खेती बहुत कठिन और श्रमसाध्य है। फसल की कटाई मुख्य रूप से मधुबनी जिले का मछुआरा समुदाय शामिल है।
- ✓ **पारंपरिक तरीके:** आज भी मधुबनी जिले के सुदुर ग्रामीण क्षेत्रों पारम्परिक तरीके का इस्तेमाल अधिक होता है। हालांकि, अब वैज्ञानिक तरीकों को भी बढ़ावा दिया जा रहा है और वत्र्तमान में मधुबनी जिले में कई बड़ी प्रसंस्करण इकाई की भी स्थापना हो चुकी है।

मखाना विकास का आरंभिक प्रयत्न:

- ❖ **अनुसंधान और उन्नत बीज:** मखाना अनुसंधान संस्थान दरभंगा के द्वारा किसानों को नवीनत्तम जानकारी के साथ नई किस्मों जैसे स्वर्ण वैदेही का विकास किया गया हैं, जिससे गुणवत्ता के साथ पैदावार में वृद्धि हो रही है।
- ❖ **नीजी संस्थाएँ:** जिले में कई नीजी संस्थायें स्थापित की गयी है, जो सीधे किसानों से मखाना का बीज खरीदकर प्रसंस्करण, श्रेणीकरण, पैकेजिंग और ब्रांडिंग करके देश के स्थानीय बाजारों में बिक्री के साथ-साथ अन्तराष्ट्रीय बाजारों में भी निर्यात कर रहे हैं।
- ❖ **सरकारी पहल:** कम आमदनी पर जीवन यापन करने वाले लघु एवं सिमांत किसानों की समस्याओं को समझते हुए बिहार सरकार उन्हे ऋण और प्रौद्योगिकी उपलब्ध करा रही है। शोधकत्र्ता एवं वैज्ञानिक मखाना की अच्छी गुणवत्ता के साथ बेहतर उत्पादन के लिए उन्नत कृषि संसाधनों की खोज में प्रयासरत हैं, जो अधिक टिकाऊ, पर्यावरण के अनुकूल और किसानों के स्वास्थ्य के लिए भी अच्छे होंगे। इससे मखाना उत्पादन में लगने वाले समय को कम करने में भी मदद मिलेगी।

सरकार के द्वारा वर्ष 2022 में ''मिथिला मखाना'' के नाम से भौगोलिक सकेंत लेवल (जिओग्राफिकल इंडिकेशन-जी.आई. टैग) मिला है, जो मखाना की उत्पत्ति स्थान को दर्शाने के साथ-साथ उच्च गुणवत्ता और विशेषता का प्रमाणिकरण करता है।

मखाना बोर्ड की स्थापना: भारत सरकार ने बेहतर स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ताओं की देश और वैश्विक स्तर पर बढ़ती मांग को

ISSN: 3049-2211

देखते हुए 2024 में मखाना बोर्ड की स्थापना की है जिसका उद्देश्य निम्नलिखित है।

मखाना बोर्ड का उद्देश्य:

- ✓ मखाना के उत्पादन, प्रसंस्करण, ब्रांडिंग, बिक्री, विज्ञापन और विपणन में सुधार के लिए किया गया है।
- ✓ यह बोर्ड मखाना किसानों को वित्तीय सहायता और प्रशिक्षण के साथ-साथ व्यवसाय में मदद चाहता है। इसके अतिरिक्त यह बोर्ड मखाना किसानों को सरकारी मंजूरी का लाभ दिलाने में भी मदद करेगा।
- ✓ यह बोर्ड मखाना की खेती से जुड़े किसानों को कृषक उत्पादक संगठन (एफ.पी.ओ.) से जोड़ने में मदद करेगा। इससे संबंधित आर्थिक संरचना को प्रभावशाली बनाने और किसानों की सामूहिक सौदेवाजी की शक्ति को बढ़ाने में मदद मिलेगी और विचैलियों से भी छुटकारा मिलेगा।

निष्कर्ष

मधुवनी में मखाना की खेती अब सिर्फ एक पारम्परिक व्यवसाय नहीं, बल्कि एक उच्च लाभकारी व्यवसायिक उद्यम बन गयी है, जो आधुनिक तकनीक के साथ आगे बढ़ रही है और मखाना का उत्पादन लगभग 9 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि की दर से बढ़ रही है।

♣♣♣

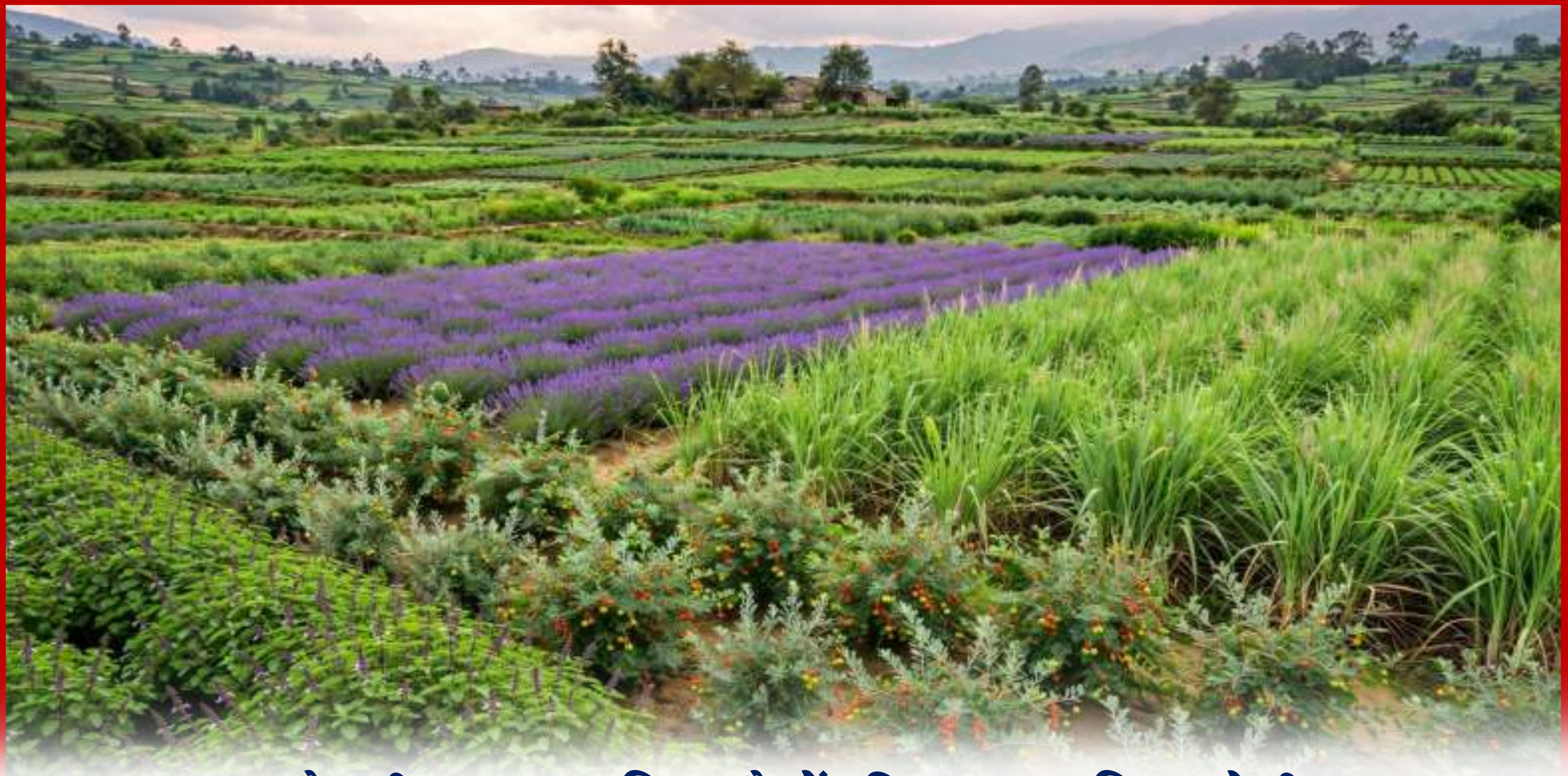

औषधीय एवं सुगंधित पौधों की व्यावसायिक खेती

साहिल अली
पीएच.डी. शोधार्थी (पुष्प विज्ञान एवं भू-दृश्य सौंदर्यीकरण)
सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ

भारत को 'विश्व की जड़ी-बूटी राजधानी' कहा जाता है, क्योंकि यहाँ हिमालय की पहाड़ियों से लेकर प्रायद्वीपीय पठारों तक विविध जलवायु एवं मृदा परिस्थितियाँ पाई जाती हैं, जो अनेक प्रकार के औषधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती के लिए अनुकूल हैं। परंपरागत रूप से इन पौधों का अधिकांश भाग प्राकृतिक वनों से एकत्र किया जाता था, किंतु बढ़ती मांग, वनों पर बढ़ते दबाव एवं जैव-विविधता संरक्षण की आवश्यकता के कारण अब इनकी व्यावसायिक स्तर पर खेती को प्रोत्साहित किया जा रहा है। आयुर्वेद, यूनानी एवं होम्योपैथी जैसी पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों के साथ-साथ आधुनिक फार्मास्युटिकल, सौंदर्य प्रसाधन, इत्र एवं खाद्य उद्योगों में भी इन पौधों की मांग निरंतर बढ़ रही है।

वैश्विक स्तर पर कोविड-19 महामारी के बाद प्राकृतिक एवं स्वास्थ्यवर्धक उत्पादों के प्रति उपभोक्ताओं की जागरूकता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जिससे औषधीय एवं सुगंधित पौधों पर आधारित उद्योग को भी बढ़ावा मिला है। रासायनिक दवाओं के संभावित दुष्प्रभावों के प्रति बढ़ती चिंता ने भी लोगों को प्राकृतिक एवं जड़ी-बूटी आधारित उत्पादों की ओर आकर्षित किया है। ऐसे में किसानों के लिए यह क्षेत्र न केवल पारंपरिक फसलों का एक संभावित लाभदायक विकल्प है, बल्कि सतत एवं जलवायु-अनुकूल कृषि प्रणाली को बढ़ावा देने का भी एक महत्वपूर्ण माध्यम बन सकता है।

इस लेख में औषधीय एवं सुगंधित पौधों के महत्व, भारत में उनकी खेती की संभावनाओं, प्रमुख प्रजातियों, वैज्ञानिक खेती पद्धतियों, प्रसंस्करण एवं मूल्य श्रृंखला, आर्थिक लाभप्रदता, सरकारी सहायता योजनाओं तथा इस क्षेत्र में विद्यमान प्रमुख चुनौतियों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

औषधीय एवं सुगंधित पौधों का महत्व

औषधीय पौधे वे पौधे हैं जिनके विभिन्न भाग—जड़, तना, पत्ती, फूल, फल या बीज—में ऐसे प्राकृतिक रासायनिक यौगिक पाए जाते हैं, जिनका उपयोग स्वास्थ्य एवं औषधीय उद्देश्यों के लिए किया जाता है। दूसरी ओर, सुगंधित पौधे वे पौधे हैं जिनसे आसवन (Distillation) अथवा निष्कर्षण (Extraction) जैसी विधियों द्वारा सुगंधित आवश्यक तेल (Essential Oil) प्राप्त किया जाता है। इन तेलों का उपयोग इत्र, सौंदर्य प्रसाधन, अरोमाथेरेपी एवं खाद्य उद्योग सहित विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है।

इन दोनों वर्गों के पौधों का महत्व केवल स्वास्थ्य एवं सौंदर्य उद्योग तक सीमित नहीं है, बल्कि वे जैव-विविधता संरक्षण, सतत कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सशक्तीकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार, विश्व की बड़ी आबादी अपनी प्राथमिक स्वास्थ्य आवश्यकताओं के लिए किसी न

किसी रूप में पारंपरिक औषधीय पौधों एवं उनसे प्राप्त उत्पादों का उपयोग करती है।

इसके अतिरिक्त, अनेक औषधीय एवं सुगंधित पौधे अपेक्षाकृत कम पानी एवं सीमित पोषक तत्वों वाली परिस्थितियों में भी उत्पादन देने में सक्षम होते हैं। इस कारण कुछ प्रजातियाँ बंजर, ऊसर एवं सीमांत भूमि के उपयोग के लिए भी उपयुक्त हो सकती हैं। कई प्रजातियों में प्राकृतिक रूप से कीट एवं रोगों के प्रति सहनशीलता पाई जाती है, जिससे कुछ परिस्थितियों में रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग को कम किया जा सकता है। यही कारण है कि बदलती जलवायु परिस्थितियों में औषधीय एवं सुगंधित पौधों को जलवायु-सहनशील एवं विविधीकृत कृषि प्रणाली के एक संभावित घटक के रूप में देखा जा रहा है।

भारत में औषधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती की संभावनाएँ

भारत में लगभग 8000 से अधिक पौध प्रजातियों को औषधीय गुणों से युक्त माना जाता है, जिनमें से लगभग 1300 प्रजातियों का व्यावसायिक स्तर पर उपयोग किया जाता है। देश की विविध कृषि-जलवायु परिस्थितियाँ—हिमालयी क्षेत्र, गंगा के मैदान, थार मरुस्थल, पश्चिमी घाट एवं पूर्वोत्तर के वर्षा वन—विभिन्न प्रकार के औषधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करती हैं।

भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड (National Medicinal Plants Board—NMPB) की स्थापना इस क्षेत्र में औषधीय पौधों के संरक्षण, खेती, अनुसंधान एवं विकास को बढ़ावा देने के उद्देश्य से की गई है। वैश्विक स्तर पर हर्बल उत्पादों एवं आवश्यक तेलों की मांग में वृद्धि के साथ भारतीय किसानों के लिए घरेलू बाजार के साथ-साथ निर्यात बाजार में भी संभावनाएँ बढ़ी हैं। यूरोप एवं अमेरिका जैसे बाजारों में प्राकृतिक एवं जैविक उत्पादों की बढ़ती मांग इस क्षेत्र के विस्तार के लिए महत्वपूर्ण अवसर प्रस्तुत करती है।

उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, कर्नाटक एवं उत्तराखंड जैसे राज्यों में विभिन्न औषधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती की जाती है। उत्तराखंड एवं हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रों में उच्च-मूल्य वाली औषधीय प्रजातियों की खेती की संभावनाएँ हैं, जबकि मध्य भारत के क्षेत्रों में अश्वगंधा एवं सफेद मूसली जैसी फसलों का उत्पादन किया जाता है। इसी प्रकार विभिन्न राज्यों में जलवायु एवं मृदा परिस्थितियों के अनुसार स्थानीय रूप से अनुकूल औषधीय एवं सुगंधित पौधों का चयन किया जा सकता है।

भारतीय औषधीय एवं हर्बल उत्पादों की घरेलू तथा अंतरराष्ट्रीय बाजार में मांग बनी हुई है। गुणवत्ता, मानकीकरण एवं उचित प्रसंस्करण पर विशेष ध्यान देकर किसान इस क्षेत्र में बेहतर बाजार अवसर प्राप्त कर सकते हैं।

प्रमुख औषधीय पौधे एवं उनके उपयोग

भारत में व्यावसायिक स्तर पर उगाए जाने वाले कुछ प्रमुख औषधीय पौधों, उनके उपयोगी भाग, प्रमुख सक्रिय तत्व एवं औषधीय उपयोगों का विवरण निम्न तालिका में प्रस्तुत किया गया है:

तालिका 1: प्रमुख औषधीय पौधे, उनके उपयोगी भाग एवं प्रमुख उपयोग

पौधे का नाम	उपयोगी भाग	प्रमुख सक्रिय तत्व	प्रमुख उपयोग
अश्वगंधा	जड़	विथेनोलाइड्स	तनाव प्रबंधन एवं स्वास्थ्यवर्धक उत्पाद
सर्पगंधा	जड़	रिसरपीन	रक्तचाप प्रबंधन एवं तंत्रिका संबंधी उपयोग
तुलसी	पत्ती	यूजेनॉल	श्वसन स्वास्थ्य एवं पारंपरिक औषधीय उपयोग
एलोवेरा (घृतकुमारी)	पत्ती/गूदा	एलोइन	त्वचा देखभाल एवं सौंदर्य प्रसाधन
सफेद मूसली	कंद	सैपोनिन्स	स्वास्थ्यवर्धक एवं टॉनिक उत्पाद
ब्राह्मी	पूरा पौधा	बैकोसाइड्स	स्मृति एवं संज्ञानात्मक स्वास्थ्य से संबंधित उपयोग

इन पौधों के अतिरिक्त शतावरी, गिलोय, कालमेघ, स्टीविया एवं इसबगोल जैसी अनेक प्रजातियाँ भी भारत के विभिन्न क्षेत्रों में उगाई जाती हैं। इनकी घरेलू एवं अंतरराष्ट्रीय बाजार में मांग के कारण किसानों के लिए इन फसलों में विविधीकरण एवं व्यावसायिक खेती की संभावनाएँ मौजूद हैं।

प्रमुख सुगंधित पौधे एवं आवश्यक तेल उद्योग

सुगंधित पौधों की व्यावसायिक खेती मुख्यतः उनके आवश्यक तेल की मात्रा एवं गुणवत्ता के आधार पर की जाती है। मेंथा (पिपरमिंट), लेमनग्रास, सिट्रोनेला, पामारोसा, जिरेनियम, लैवेंडर एवं तुलसी भारत में प्रमुख रूप से उगाए जाने वाले सुगंधित पौधों में शामिल हैं।

उत्तर प्रदेश में मेंथा की व्यापक स्तर पर खेती की जाती है। इससे प्राप्त मेंथा तेल का उपयोग टूथपेस्ट, माउथवॉश, औषधीय उत्पाद एवं च्यूइंगम जैसे विभिन्न उत्पादों में किया जाता है। लेमनग्रास एवं सिट्रोनेला तेल का उपयोग मच्छर-निरोधक उत्पादों, साबुन एवं सौंदर्य

ISSN: 3049-2211

प्रसाधनों में किया जाता है। लैवेंडर एवं जिरेनियम तेल का उपयोग उच्च-मूल्य वाले इत्र, सुगंधित उत्पादों एवं अरोमाथेरेपी में किया जाता है।

आवश्यक तेल उद्योग में केवल फसल उत्पादन ही नहीं, बल्कि कटाई का उचित समय, तेल निष्कर्षण की विधि, भंडारण एवं गुणवत्ता नियंत्रण भी उत्पाद के अंतिम मूल्य को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए किसानों के लिए उत्पादन के साथ-साथ प्राथमिक प्रसंस्करण एवं विपणन की जानकारी भी आवश्यक है।

खेती हेतु उपयुक्त जलवायु एवं मृदा

अधिकांश औषधीय एवं सुगंधित पौधे विभिन्न प्रकार की मृदा एवं जलवायु परिस्थितियों में उगाए जा सकते हैं, लेकिन प्रत्येक प्रजाति की अपनी विशिष्ट जलवायु एवं मृदा आवश्यकताएँ होती हैं। सामान्यतः अच्छी जल निकास वाली हल्की दोमट से बलुई दोमट मृदा तथा लगभग 6.5 से 7.5 के बीच pH वाली भूमि अनेक प्रजातियों के लिए उपयुक्त मानी जाती है। हालांकि, किसी विशेष फसल के लिए भूमि का चयन उसकी विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुसार किया जाना चाहिए।

हिमालयी एवं पर्वतीय क्षेत्रों की अपेक्षाकृत ठंडी जलवायु कुछ औषधीय एवं सुगंधित प्रजातियों के लिए अनुकूल होती है, जबकि गंगा के मैदानी क्षेत्रों की जलवायु में मेंथा, तुलसी एवं अश्वगंधा जैसी प्रजातियों की खेती की जा सकती है। शुष्क एवं अर्ध-शुष्क क्षेत्रों में सफेद मूसली, ग्वारपाठा एवं इसबगोल जैसी प्रजातियाँ उपयुक्त परिस्थितियों में सफलतापूर्वक उगाई जा सकती हैं।

खेती शुरू करने से पहले मृदा परीक्षण करवाना आवश्यक है, ताकि भूमि की पोषक स्थिति, pH एवं अन्य आवश्यक गुणों का आकलन किया जा सके और उसी के अनुसार पोषक तत्व प्रबंधन की योजना बनाई जा सके। अनेक औषधीय पौधे जैविक खाद एवं वर्मी कम्पोस्ट के प्रयोग से लाभान्वित हो सकते हैं। उचित जैविक पदार्थ प्रबंधन से मृदा की संरचना एवं पोषक तत्वों की उपलब्धता बनाए रखने में सहायता मिलती है।

औषधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती में रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशकों का संतुलित एवं आवश्यकता-आधारित प्रयोग महत्वपूर्ण है, विशेषकर तब जब उत्पाद को औषधीय, हर्बल अथवा जैविक बाजार के लिए तैयार किया जा रहा हो। वर्षा-आधारित क्षेत्रों में उपलब्ध जल के कुशल उपयोग के लिए ड्रिप सिंचाई जैसी प्रणालियों को अपनाया जा सकता है।

व्यावसायिक खेती की वैज्ञानिक विधि

औषधीय एवं सुगंधित पौधों की व्यावसायिक खेती एक क्रमबद्ध प्रक्रिया है, जिसमें भूमि चयन से लेकर उत्पादन, कटाई, प्रसंस्करण एवं विपणन तक विभिन्न चरण शामिल होते हैं। उचित भूमि चयन एवं खेत की तैयारी के बाद गुणवत्तायुक्त बीज अथवा प्रमाणित रोपण सामग्री का चयन किया जाता है। आवश्यकता के अनुसार पौध तैयार करने के लिए नर्सरी स्थापित की जाती है और उपयुक्त अवस्था में पौधों को मुख्य खेत में रोपित किया जाता है।

फसल की स्थापना के बाद सिंचाई, संतुलित पोषण प्रबंधन, खरपतवार नियंत्रण तथा कीट एवं रोग प्रबंधन जैसी कृषि क्रियाएँ समय पर करना आवश्यक है। फसल की उचित वृद्धि एवं सक्रिय औषधीय तत्वों अथवा आवश्यक तेल की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए इन प्रबंधन क्रियाओं का विशेष महत्व है।

कटाई का उचित समय औषधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती में अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि सक्रिय तत्वों एवं आवश्यक तेल की मात्रा पौधे की वृद्धि एवं परिपक्वता अवस्था के अनुसार बदल सकती है। इसलिए प्रत्येक फसल की अनुशंसित अवस्था पर कटाई की जानी चाहिए। कटाई के बाद उत्पाद को शीघ्रता से उचित विधि द्वारा सुखाना एवं प्राथमिक प्रसंस्करण करना आवश्यक है, ताकि नमी, रंग, सुगंध, सक्रिय तत्व एवं अन्य गुणवत्ता विशेषताओं को यथासंभव बनाए रखा जा सके।

इस प्रकार औषधीय एवं सुगंधित पौधों की सफल व्यावसायिक खेती के लिए उपयुक्त प्रजाति का चयन, गुणवत्तायुक्त रोपण सामग्री, वैज्ञानिक फसल प्रबंधन, उचित कटाई एवं प्रसंस्करण तथा विश्वसनीय बाजार से जुड़ाव आवश्यक है।

चित्र 1: औषधीय एवं सुगंधित पौधों की व्यावसायिक खेती चक्र — भूमि तैयारी से विपणन तक के प्रमुख चरण

प्रसंस्करण एवं मूल्य श्रृंखला

औषधीय एवं सुगंधित पौधों से अधिकतम आर्थिक लाभ प्राप्त करने के लिए केवल कच्ची उपज का विक्रय करने के बजाय प्रसंस्करण एवं मूल्यवर्धन को अपनाना अत्यंत आवश्यक है। सुगंधित पौधों से सामान्यतः भाप आसवन (Steam Distillation) द्वारा आवश्यक तेल प्राप्त किया जाता है, जबकि औषधीय पौधों से उपयुक्त प्रसंस्करण एवं निष्कर्षण विधियों द्वारा सक्रिय अर्क (Extracts) प्राप्त किए जाते हैं। इन प्रसंस्कृत उत्पादों का उपयोग फार्मास्यूटिकल, आयुर्वेदिक औषधि, सौंदर्य प्रसाधन, इत्र तथा खाद्य एवं पेय उद्योगों में कच्चे माल के रूप में किया जाता है।

प्रसंस्करण के बाद उत्पादों की गुणवत्ता, शुद्धता एवं भंडारण क्षमता में सुधार होता है, जिससे उनका बाजार मूल्य भी बढ़ सकता है। किसानों द्वारा सामूहिक अथवा व्यक्तिगत स्तर पर छोटी आसवन एवं प्राथमिक प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना करने से कच्ची उपज के स्थान पर मूल्यवर्धित उत्पादों का विपणन संभव होता है। इससे बिचौलियों पर निर्भरता कम करने, बेहतर मूल्य प्राप्त करने तथा स्थानीय स्तर पर रोजगार के अवसर बढ़ाने में सहायता मिल सकती है। इस प्रकार, उत्पादन से लेकर प्रसंस्करण, पैकेजिंग, विपणन और अंतिम उपभोक्ता तक की पूरी मूल्य श्रृंखला किसानों की आय बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

चित्र 2: औषधीय एवं सुगंधित पौधों की मूल्य श्रृंखला — कच्चे पौधे से अंतिम उत्पाद एवं बाजार तक

व्यावसायिक खेती की आर्थिक लाभप्रदता

पारंपरिक खाद्यान्न फसलों की तुलना में औषधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती कई परिस्थितियों में अधिक आर्थिक लाभ प्रदान करने की क्षमता रखती है। विशेष रूप से जब किसान प्राथमिक प्रसंस्करण, आवश्यक तेल निष्कर्षण एवं बेहतर विपणन व्यवस्था से जुड़ते हैं, तो उत्पाद का मूल्य बढ़ सकता है। विभिन्न फसलों की लाभप्रदता उनकी उपज, तेल की मात्रा एवं गुणवत्ता, बाजार मूल्य, उत्पादन लागत और स्थानीय बाजार की स्थिति पर निर्भर करती है।

नीचे कुछ प्रमुख सुगंधित फसलों की तेल उत्पादकता, बाजार मूल्य एवं अनुमानित वार्षिक आय का तुलनात्मक विवरण दिया गया है:

तालिका 2: प्रमुख सुगंधित फसलों की तेल उत्पादकता एवं आर्थिक लाभप्रदता (अनुमानित आँकड़े)

फसल	तेल उत्पादन (लीटर/हेक्टेयर)	बाजार मूल्य (₹/लीटर)	अनुमानित आय (₹/हेक्टेयर/वर्ष)	परिपक्वता अवधि (माह)
मेंथा (पिपरमिंट)	150 से 200	900 से 1,200	1,50,000 से 2,20,000	4
लेमनग्रास	80 से 120	700 से 1,000	70,000 से 1,10,000	6–8
सिट्रोनेला	100 से 150	600 से 900	70,000 से 1,20,000	8–10
पामारोसा	40 से 60	2,000 से 2,800	90,000 से 1,50,000	8–9
लैवेंडर	20 से 35	6,000 से 9,000	1,50,000 से 2,50,000	12 (बारह मासी)

तालिका से स्पष्ट होता है कि लैवेंडर एवं पामारोसा जैसी उच्च-मूल्य वाली फसलें उचित जलवायु, प्रबंधन एवं बाजार उपलब्धता की स्थिति में प्रति हेक्टेयर अच्छी आय प्रदान कर सकती हैं। दूसरी ओर, मेंथा जैसी अपेक्षाकृत अल्प-अवधि वाली फसलें कम समय में आय प्राप्त करने का अवसर देती हैं तथा उपयुक्त कृषि परिस्थितियों में एक से अधिक फसल चक्र की संभावना भी रहती है। इसलिए फसल का चयन करते समय भूमि एवं जलवायु की उपयुक्तता के साथ-साथ उत्पादन लागत, प्रसंस्करण सुविधा और बाजार की मांग को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

सरकारी योजनाएँ एवं सहायता

भारत सरकार एवं विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा औषधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती को प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न प्रकार की योजनाएँ एवं सहायता कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं। राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड (NMPB) द्वारा औषधीय पौधों की खेती, गुणवत्तायुक्त रोपण सामग्री, प्रशिक्षण, प्रसंस्करण तथा विपणन से संबंधित गतिविधियों को प्रोत्साहन दिया जाता है। इससे किसानों को वैज्ञानिक खेती एवं मूल्यवर्धन से जोड़ने में सहायता मिलती है।

केंद्रीय औषधीय एवं सुगंधित पौध संस्थान (CIMAP), लखनऊ जैसे अनुसंधान संस्थान उन्नत किस्मों के विकास, उत्पादन तकनीक, प्रसंस्करण तथा प्रशिक्षण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय बागवानी मिशन/बागवानी विकास कार्यक्रमों तथा विभिन्न राज्य कृषि एवं बागवानी विभागों के माध्यम से भी किसानों को तकनीकी मार्गदर्शन एवं उपलब्ध प्रावधानों के अनुसार वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है।

इन पहलों का प्रमुख उद्देश्य किसानों को केवल कच्चे माल के उत्पादन तक सीमित न रखते हुए उत्पादन, प्राथमिक प्रसंस्करण, मूल्यवर्धन, पैकेजिंग एवं विपणन जैसी पूरी मूल्य श्रृंखला से जोड़ना है। इससे इस क्षेत्र में उद्यमिता एवं ग्रामीण रोजगार को भी बढ़ावा मिल सकता है।

चुनौतियाँ

औषधीय एवं सुगंधित पौधों की व्यावसायिक खेती में व्यापक संभावनाओं के बावजूद किसानों के सामने कई व्यावहारिक चुनौतियाँ हैं। गुणवत्तायुक्त एवं प्रमाणित बीज तथा रोपण सामग्री की सीमित उपलब्धता प्रमुख समस्याओं में शामिल है। इसके अतिरिक्त, स्थानीय स्तर पर प्रसंस्करण एवं भंडारण सुविधाओं की कमी के कारण किसानों को कई बार कच्ची उपज कम मूल्य पर बेचनी पड़ती है। बाजार में मूल्य अस्थिरता, उत्पादों के मानकीकरण की कमी तथा प्रत्यक्ष खरीदारों से सीमित संपर्क भी किसानों की लाभप्रदता को प्रभावित करते हैं।

आयुर्वेदिक एवं हर्बल उत्पादों के लिए आवश्यक गुणवत्ता मानकों, प्रमाणन एवं निर्यात आवश्यकताओं को पूरा करना छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए अपेक्षाकृत कठिन हो सकता है। इन समस्याओं को कम करने के लिए किसान सहकारी समितियों, अनुबंध खेती (Contract Farming) एवं किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) के माध्यम से सामूहिक उत्पादन, प्रसंस्करण एवं विपणन को बढ़ावा देना उपयोगी हो सकता है। सामूहिक प्रयासों से बेहतर बाजार संपर्क, प्रसंस्करण सुविधाओं तक पहुंच तथा सौदेबाजी की क्षमता में वृद्धि हो सकती है।

एक अन्य महत्वपूर्ण चुनौती किसानों में तकनीकी ज्ञान एवं प्रशिक्षण की कमी है। औषधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती पारंपरिक खाद्यान्न फसलों से अलग प्रबंधन तकनीकों की मांग करती है। उचित प्रजाति चयन, गुणवत्तायुक्त रोपण सामग्री, सिंचाई, पोषण, कटाई का उचित समय तथा कटाई-पश्चात प्रबंधन का सीधे तौर पर उपज एवं सक्रिय घटकों की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ता है। इसलिए वैज्ञानिक प्रशिक्षण एवं स्थानीय स्तर पर तकनीकी मार्गदर्शन आवश्यक है।

कुछ उच्च-मूल्य वाली प्रजातियों, जैसे केसर एवं कुठ, की खेती के लिए विशिष्ट भौगोलिक एवं जलवायु परिस्थितियों की आवश्यकता होती है, जिसके कारण इनकी खेती सभी क्षेत्रों में संभव नहीं है। इसके साथ ही, जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान में वृद्धि, मौसम चक्र में बदलाव तथा अनियमित वर्षा जैसी परिस्थितियाँ संवेदनशील फसलों की उपज एवं गुणवत्ता को प्रभावित कर सकती हैं। अतः उपयुक्त प्रजातियों का चयन, जल प्रबंधन एवं अन्य जलवायु-अनुकूलन रणनीतियों को अपनाना आवश्यक है।

निष्कर्ष

औषधीय एवं सुगंधित पौधों की व्यावसायिक खेती भारतीय किसानों के लिए आय वृद्धि, ग्रामीण रोजगार सृजन एवं कृषि विविधीकरण का एक महत्वपूर्ण माध्यम बन सकती है। भारत की समृद्ध जैव-विविधता, विभिन्न जलवायु परिस्थितियाँ तथा औषधीय पौधों से संबंधित पारंपरिक ज्ञान इस क्षेत्र के विकास के लिए मजबूत आधार प्रदान करते हैं।

वैज्ञानिक खेती पद्धतियों, गुणवत्तायुक्त रोपण सामग्री, उचित कटाई एवं कटाई-पश्चात प्रबंधन, प्रभावी प्रसंस्करण, सुदृढ़ मूल्य श्रृंखला तथा बेहतर बाजार संपर्क के समन्वय से किसानों की आर्थिक लाभप्रदता में वृद्धि की जा सकती है। सरकारी योजनाओं, अनुसंधान संस्थानों एवं विस्तार सेवाओं का सहयोग इस क्षेत्र को अधिक व्यवस्थित एवं प्रतिस्पर्धी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

यदि युवा किसान एवं कृषि उद्यमी आधुनिक उत्पादन तकनीकों, प्रसंस्करण सुविधाओं, अनुसंधान संस्थानों के तकनीकी सहयोग तथा बाजार की मांग को ध्यान में रखते हुए इस क्षेत्र में प्रवेश करें, तो औषधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती आर्थिक समृद्धि के साथ-साथ सतत एवं पर्यावरण-अनुकूल कृषि प्रणाली को भी बढ़ावा दे सकती है।

♣♣♣

मृदा स्वास्थ्य कार्ड:

मृदा परीक्षण से संतुलित पोषण एवं बेहतर फसल उत्पादन की ओर

गोविंद विश्वकर्मा*- शोध छात्र, मृदा विज्ञान विभाग, डॉ. राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर (बिहार)
डॉ. मनोज कुमार प्रजापति- सहायक प्रोफेसर कृषि और संबद्ध विज्ञान संकाय, यूनाइटेड यूनिवर्सिटी, झलवा रावतपुर प्रयागराज, (उत्तर प्रदेश)

कृषि किसी भी देश की अर्थव्यवस्था की रीढ़ होती है, और इसकी सफलता मिट्टी की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों के उपयोग, जलवायु परिवर्तन और अनुचित खेती प्रथाओं के कारण मिट्टी की उर्वरता और उत्पादकता प्रभावित हो रही है। ऐसे में मृदा स्वास्थ्य कार्ड (Soil Health Card - SHC) योजना किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण पहल साबित हो रही है। यह योजना मिट्टी की पोषण स्थिति का आकलन करके, किसानों को वैज्ञानिक और संतुलित उर्वरक उपयोग के लिए मार्गदर्शन प्रदान करती है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड क्या है?

मृदा स्वास्थ्य कार्ड एक सरकारी योजना के तहत प्रदान किया जाने वाला दस्तावेज़ है, जिसमें मिट्टी की गुणवत्ता, उसकी पोषक तत्वों की स्थिति, जैविक और भौतिक विशेषताओं की जानकारी होती है। इस कार्ड में मिट्टी की जाँच के आधार पर उर्वरकों और पोषक तत्वों के संतुलित उपयोग की सिफारिशें दी जाती हैं। यह न केवल किसानों को मिट्टी की उचित देखभाल करने में मदद करता है बल्कि खेती की सततता को भी सुनिश्चित करता है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना की पृष्ठभूमि

भारत सरकार ने 2015 में मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना शुरू की थी, जिसका उद्देश्य किसानों को उनकी मिट्टी की पोषण गुणवत्ता की जानकारी देना और उन्हें उपयुक्त उर्वरकों एवं अन्य संसाधनों के उपयोग के लिए प्रशिक्षित करना था। यह योजना 3 वर्ष के चक्र में पूरी की जाती है, जिसमें प्रत्येक खेत की मिट्टी की जाँच कर रिपोर्ट दी जाती है। यह योजना सबसे पहले राजस्थान राज्य में पायलट प्रोजेक्ट के रूप में शुरू की गई थी।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड में शामिल मापदंड

मृदा स्वास्थ्य कार्ड में कुल 12 मापदंडों (Parameters) को मापा जाता है, जिन्हें तीन मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया गया है:

मिट्टी के पोषक तत्व और गुण

श्रेणी	तत्व / गुण	महत्व / भूमिका
मुख्य पोषक तत्व (Macronutrients)	नाइट्रोजन (N)	पौधों की वृद्धि, प्रोटीन और क्लोरोफिल निर्माण में सहायक
	फॉस्फोरस (P)	जड़ वृद्धि, फूल और फलन में महत्वपूर्ण
	पोटैशियम (K)	रोग प्रतिरोधक क्षमता, पानी संतुलन और एंजाइम सक्रियता को नियंत्रित करता है

ISSN: 3049-2211

सूक्ष्म पोषक तत्व (Micronutrients)	सल्फर (S)	प्रोटीन संश्लेषण और एंजाइम गतिविधि में सहायक
	जिंक (Zn)	एंजाइम सक्रियता, वृद्धि नियमन और हार्मोन उत्पादन में मददगार
	आयरन (Fe)	क्लोरोफिल संश्लेषण और एंजाइम क्रियाओं में आवश्यक
	कॉपर (Cu)	एंजाइम उत्पादन और प्रोटीन संश्लेषण में सहायक
	मैंगनीज (Mn)	प्रकाश संश्लेषण और नाइट्रोजन चयापचय में महत्वपूर्ण
	बोरॉन (B)	कोशिका विभाजन, परागण और फूलों के विकास में सहायक
भौतिक और जैविक गुण (Physical & Biological Properties)	जैविक कार्बन (Organic Carbon)	मिट्टी की उर्वरता और सूक्ष्मजीवों की सक्रियता को बढ़ाता है
	विद्युत चालकता (EC)	मिट्टी में घुले हुए लवणों की मात्रा दर्शाता है
	मिट्टी का pH	मिट्टी की अम्लता या क्षारीयता को निर्धारित करता है, जिससे पोषक तत्वों की उपलब्धता प्रभावित होती है

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के उद्देश्य

1. **मिट्टी की गुणवत्ता का मूल्यांकन** - मिट्टी में उपस्थित आवश्यक पोषक तत्वों का विश्लेषण करना।
2. **संतुलित उर्वरक उपयोग को बढ़ावा देना** - अत्यधिक रासायनिक उर्वरकों के उपयोग को रोकना और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण सुनिश्चित करना।
3. **पर्यावरण संरक्षण** - मृदा और जल संसाधनों को सुरक्षित रखने के लिए जैविक और हरित उर्वरकों के उपयोग को बढ़ावा देना।
4. **किसानों की आय में वृद्धि** - मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार कर उपज बढ़ाना और खेती की लागत को कम करना।
5. **सतत कृषि को बढ़ावा देना** - वैज्ञानिक खेती को प्रोत्साहित करके दीर्घकालिक कृषि उत्पादकता को बनाए रखना।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना के तहत सरकारी पहल

1. मृदा स्वास्थ्य प्रबंधन योजना: सरकार द्वारा किसानों को मृदा स्वास्थ्य कार्ड के आधार पर आवश्यक उर्वरकों और पोषक तत्वों के प्रयोग की जानकारी देने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाए जाते हैं। इसमें किसानों को मृदा परीक्षण प्रयोगशालाओं और पोषण संतुलन बनाए रखने की तकनीकों से अवगत कराया जाता है।

2. कृषि विज्ञान केंद्र (KVK) और मृदा परीक्षण प्रयोगशालाएँ: कृषि मंत्रालय ने देशभर में मृदा परीक्षण प्रयोगशालाएँ स्थापित की हैं, जहाँ मिट्टी के नमूनों का विश्लेषण कर किसानों को वैज्ञानिक आधार पर उर्वरकों के प्रयोग की सलाह दी जाती है।

3. प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (PMKSY): यह योजना मृदा स्वास्थ्य कार्ड से जुड़ी हुई है, क्योंकि इसका उद्देश्य जल संसाधनों के सतत उपयोग को बढ़ावा देना और सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों के माध्यम से मिट्टी की नमी को बनाए रखना है।

4. परंपरागत कृषि विकास योजना (PKVY): इस योजना के अंतर्गत जैविक खेती को प्रोत्साहित किया जाता है, जिससे किसानों को बिना रासायनिक उर्वरकों के प्राकृतिक रूप से मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने के लिए सहायता मिलती है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड के लाभ

1. मिट्टी की उर्वरता बनाए रखना: मिट्टी में उपस्थित पोषक तत्वों की जानकारी मिलने के बाद, किसान उचित उर्वरकों का प्रयोग कर सकते हैं, जिससे मिट्टी की उर्वरता लंबे समय तक बनी रहती है।

2. उर्वरकों के संतुलित उपयोग को बढ़ावा: यह योजना किसानों को वैज्ञानिक रूप से उर्वरकों का उपयोग करने के लिए प्रेरित करती है, जिससे मिट्टी में आवश्यक पोषक तत्व संतुलित रहते हैं और भूमि की उत्पादकता बनी रहती है।

3. फसल उत्पादन में वृद्धि: मृदा स्वास्थ्य कार्ड के माध्यम से सही मात्रा में पोषक तत्वों के प्रयोग से मिट्टी की गुणवत्ता में सुधार होता है, जिससे फसल की पैदावार में वृद्धि होती है।

4. पर्यावरण संरक्षण: रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी और जल स्रोत प्रदूषित होते हैं। SHC के माध्यम से किसानों को उचित मार्गदर्शन मिलने से पर्यावरण की सुरक्षा होती है।

5. खेती की लागत में कमी: उर्वरकों के संतुलित उपयोग से किसानों को अनावश्यक खर्च से बचने में मदद मिलती है, जिससे उनकी आय में वृद्धि होती है।

ISSN: 3049-2211

मृदा स्वास्थ्य कार्ड की प्रक्रिया

1. नमूना संग्रहण: कृषि विभाग के अधिकारी विभिन्न स्थानों से मिट्टी के नमूने एकत्र करते हैं। यह प्रक्रिया वैज्ञानिक तरीकों का उपयोग करके की जाती है।

2. प्रयोगशाला परीक्षण: मिट्टी के नमूनों को जांच प्रयोगशालाओं में भेजा जाता है, जहां मिट्टी की भौतिक और रासायनिक संरचना की विस्तृत जांच की जाती है।

3. रिपोर्ट तैयार करना: परिक्षण के आधार पर मिट्टी की पोषक तत्व स्थिति की विस्तृत रिपोर्ट बनाई जाती है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड का नमूना प्रारूप

किसान का नाम	पिता/पति का नाम	ग्राम	जिला	राज्य	खेत का आकार (हेक्टेयर में)

मृदा परीक्षण परिणाम	मूल्य	अनुशंसित सीमा	आवश्यक सुधार
नाइट्रोजन (N)	मान	सीमा	सुधार
फॉस्फोरस (P)	_	_	_
पोटैशियम (K)	_	_	_
जैविक कार्बन	–	–	–
मिट्टी का pH	_	_	_
विद्युत चालकता (EC)	–	–	–
सल्फर (S)	_	_	_
जिंक (Zn)	_	_	_
आयरन (Fe)	_	_	_
कॉपर (Cu)	–	–	–
मैंगनीज (Mn)	_	_	_
बोरॉन (B)	–	–	–

4. मृदा स्वास्थ्य कार्ड जारी करना: किसानों को मृदा स्वास्थ्य कार्ड दिया जाता है, जिसमें उनकी मिट्टी के लिए आवश्यक पोषक तत्वों और उर्वरकों की सिफारिशें होती हैं।

उर्वरक एवं पोषक तत्व सिफारिशें

फसलों के अनुसार उर्वरक अनुशंसा (प्रति हेक्टेयर)

- **धान:** नाइट्रोजन - 100-120 कि.ग्रा, फॉस्फोरस - 40-60 कि.ग्रा, पोटैशियम - 40-60 कि.ग्रा
- **गेहूं:** नाइट्रोजन - 120-150 कि.ग्रा, फॉस्फोरस - 50-60 कि.ग्रा, पोटैशियम - 40-50 कि.ग्रा
- **मक्का:** नाइट्रोजन - 150 कि.ग्रा, फॉस्फोरस - 60 कि.ग्रा, पोटैशियम - 60 कि.ग्रा
- **गन्ना:** नाइट्रोजन - 200 कि.ग्रा, फॉस्फोरस - 60 कि.ग्रा, पोटैशियम - 100 कि.ग्रा
- **दलहन:** नाइट्रोजन - 20-30 कि.ग्रा, फॉस्फोरस - 40-50 कि.ग्रा, पोटैशियम - 20-30 कि.ग्रा
- **तेलहन:** नाइट्रोजन - 40-60 कि.ग्रा, फॉस्फोरस - 30-40 कि.ग्रा, पोटैशियम - 20-30 कि.ग्रा

जैविक उर्वरक सिफारिशें

- वर्मी कम्पोस्ट: 5-10 टन प्रति हेक्टेयर
- हरी खाद (ग्लाइरीसिडिया, ढैंचा): 10-15 टन प्रति हेक्टेयर
- नील हरित शैवाल (ब्लू ग्रीन एल्गी): धान के लिए 10 कि.ग्रा प्रति हेक्टेयर
- जैविक उर्वरक (राइजोबियम, पीएसबी): 200 ग्राम प्रति एकड़ बीजोपचार हेतु

5. किसानों को जागरूक बनाना

कृषि विभाग किसानों को SHC के आधार पर खेती करने के लिए प्रशिक्षण देता है, जिससे वे वैज्ञानिक खेती की ओर बढ़ सकें।

निष्कर्ष

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना किसानों के लिए एक महत्वपूर्ण पहल है, जो न केवल उनकी मिट्टी की सेहत को बनाए रखने में मदद करती है बल्कि पर्यावरण संरक्षण और सतत कृषि को भी बढ़ावा देती है। SHC के माध्यम से किसान वैज्ञानिक खेती अपनाकर अपनी पैदावार और आय बढ़ा सकते हैं। सरकार और किसानों को मिलकर इस योजना को सफल बनाना चाहिए ताकि भारत की कृषि प्रणाली अधिक समृद्ध और टिकाऊ बन सके।

"स्वस्थ मृदा, समृद्ध किसान!"

■■■

संरक्षण कृषि का मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव

एम. के. तरवरिया- कृषि महाविद्यालय, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर (मध्यप्रदेश)
विद्या सागर, एच. एल. खपेडिया एवं रेनू जयंत- कृषि महाविद्यालय, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्व विद्यालय, जबलपुर (मध्यप्रदेश)

परंपरागत गहन जुताई आधारित कृषि पद्धतियों ने वर्षों से मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक संरचना को प्रभावित किया है, जिसके परिणामस्वरूप मृदा क्षरण, जैविक कार्बन की हानि एवं उत्पादकता में गिरावट जैसी समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं। इन समस्याओं के समाधान हेतु 'संरक्षण कृषि' (Conservation Agriculture) एक वैज्ञानिक एवं टिकाऊ विकल्प के रूप में उभरी है, जो न्यूनतम अथवा शून्य जुताई, स्थायी मृदा आवरण एवं फसल विविधीकरण—इन तीन मूल सिद्धांतों पर आधारित है। यह पद्धति मृदा की प्राकृतिक संरचना को यथासंभव अक्षुण्ण रखते हुए उसकी दीर्घकालिक उर्वरता, जल धारण क्षमता एवं सूक्ष्मजैविक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करती है। प्रस्तुत लेख में संरक्षण कृषि की अवधारणा एवं इसके तीन स्तंभों, मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों पर इसके प्रभाव, इसे अपनाने में आने वाली व्यावहारिक चुनौतियों तथा भारतीय कृषि में इसकी संभावनाओं पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

प्रस्तावना

दशकों से भारतीय कृषि में गहन एवं बार-बार जुताई को अच्छी खेती का पर्याय माना जाता रहा है। किसानों का यह विश्वास रहा है कि जितनी अधिक जुताई की जाएगी, मिट्टी उतनी ही भुरभुरी एवं फसल के लिए अनुकूल बनेगी। किंतु वैज्ञानिक अनुसंधानों से यह स्पष्ट हुआ है कि अत्यधिक एवं बार-बार जुताई मृदा की प्राकृतिक संरचना को नष्ट करती है, जैविक कार्बन के तीव्र अपघटन को बढ़ावा देती है तथा मृदा को कटाव एवं क्षरण के प्रति अधिक संवेदनशील बनाती है।

इस समस्या के समाधान हेतु विश्वभर में 'संरक्षण कृषि' की अवधारणा को अपनाया जा रहा है, जो परंपरागत गहन जुताई के स्थान पर मृदा-हितैषी वैकल्पिक पद्धतियों को बढ़ावा देती है। इसका मूल दर्शन यह है कि मृदा को यथासंभव कम से कम अशांत (Disturb) किया जाए, उसे सदैव किसी न किसी आवरण से ढका रखा जाए तथा विविध फसलों को चक्रानुसार उगाकर उसकी प्राकृतिक जैविक गतिविधियों को संरक्षित किया जाए। यह पद्धति न केवल मृदा स्वास्थ्य में सुधार लाती है, बल्कि दीर्घकाल में उत्पादन लागत को कम करने एवं जलवायु परिवर्तन के प्रति सहनशीलता बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध होती है।

यह समझना महत्वपूर्ण है कि संरक्षण कृषि कोई एक मात्र तकनीक नहीं, बल्कि खेती के प्रति एक समग्र दृष्टिकोण है। यह मृदा को केवल पौधों को सहारा देने वाला एक निष्क्रिय माध्यम नहीं, बल्कि करोड़ों सूक्ष्मजीवों से युक्त एक जीवंत तंत्र मानती है, जिसकी प्राकृतिक संरचना एवं जैविक प्रक्रियाओं को यथासंभव कम बाधित करना ही दीर्घकालिक उर्वरता की कुंजी है। इसी दृष्टिकोण के कारण संरक्षण कृषि को विश्व स्तर पर टिकाऊ कृषि की एक प्रमुख रणनीति के रूप में मान्यता मिली है।

ISSN: 3049-2211

संरक्षण कृषि की अवधारणा एवं तीन स्तंभ

संरक्षण कृषि तीन परस्पर जुड़े हुए मूल सिद्धांतों पर आधारित है, जिन्हें एक साथ अपनाने पर ही यह पद्धति पूर्ण एवं प्रभावी बनती है। इन तीनों स्तंभों को चित्र 1 में दर्शाया गया है।

चित्र 1: संरक्षण कृषि के तीन प्रमुख स्तंभ

(क) न्यूनतम अथवा शून्य जुताई: मृदा को बार-बार पलटने एवं भुरभुरा करने के स्थान पर न्यूनतम अथवा बिल्कुल भी जुताई न करते हुए सीधे बीज बोया जाता है। इससे मृदा की प्राकृतिक संरचना, नमी एवं सूक्ष्मजैविक तंत्र अपेक्षाकृत सुरक्षित रहते हैं।

(ख) स्थायी मृदा आवरण: फसल अवशेषों अथवा आवरण फसलों (Cover Crops) के माध्यम से मृदा की सतह को लगातार ढका रखा जाता है। इससे वाष्पीकरण, मृदा कटाव एवं तापमान में होने वाले उतार-चढ़ाव को नियंत्रित करने में सहायता मिलती है।

(ग) फसल विविधीकरण एवं फसल चक्र: एक ही फसल को बार-बार उगाने के बजाय विभिन्न फसलों को चक्रानुसार उगाया जाता है। विशेष रूप से दलहनी फसलों को फसल चक्र में सम्मिलित करने से मृदा में पोषक तत्वों का प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने में सहायता मिलती है तथा कीट एवं रोगों के चक्र को भी बाधित किया जा सकता है।

मृदा के भौतिक गुणों पर प्रभाव

संरक्षण कृषि मृदा की भौतिक संरचना में उल्लेखनीय सुधार लाती है। न्यूनतम अथवा शून्य जुताई के कारण मृदा के प्राकृतिक छिद्र एवं संरचना सुरक्षित रहते हैं, जिससे जल का रिसाव एवं वायु-संचार बेहतर होता है। फसल अवशेषों के आवरण से मृदा की सतह पर सीधी धूप एवं तेज वर्षा का प्रत्यक्ष प्रभाव कम होता है, जिससे वाष्पीकरण घटता है और मृदा में नमी अधिक समय तक बनी रहती है।

इसके अतिरिक्त, स्थायी मृदा आवरण एवं न्यूनतम मृदा अशांति के कारण मृदा कटाव में उल्लेखनीय कमी आती है। विशेषकर ढलान वाले एवं वर्षा-प्रधान क्षेत्रों में यह लाभ अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। समय के साथ मृदा की सतह पर एक स्थिर, भुरभुरी एवं जैविक रूप से सक्रिय परत विकसित होती है, जो जड़ों के विकास एवं जल अवशोषण के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करती है। परंपरागत जुताई के विपरीत, जहाँ प्रत्येक जुताई के साथ मृदा की परतें उलट-पुलट होती हैं तथा उसकी प्राकृतिक स्तरीय संरचना बार-बार बाधित होती है, संरक्षण कृषि में यह संरचना समय के साथ अधिक स्थिर एवं सुदृढ़ होती जाती है। इससे मृदा में सूक्ष्म एवं स्थूल छिद्रों (Micro and Macro Pores) का एक प्राकृतिक नेटवर्क विकसित होता है, जो अतिरिक्त वर्षा जल को शीघ्रता से मृदा में समाहित करने तथा आवश्यकता पड़ने पर पौधों को जल उपलब्ध कराने, दोनों कार्यों में सहायक होता है। यही कारण है कि संरक्षण कृषि अपनाने वाले खेतों में बाढ़ एवं सूखा, दोनों परिस्थितियों में परंपरागत खेतों की तुलना में बेहतर प्रदर्शन देखा गया है।

मृदा के रासायनिक एवं जैविक गुणों पर प्रभाव

संरक्षण कृषि का सबसे उल्लेखनीय प्रभाव मृदा के जैविक कार्बन एवं सूक्ष्मजैविक स्वास्थ्य पर पड़ता है। जुताई न करने से जैविक पदार्थ का अपघटन अपेक्षाकृत धीमा होता है, जिससे जैविक कार्बन मृदा में अधिक समय तक संचित रहता है। यह न केवल मृदा उर्वरता में सुधार करता है, बल्कि वायुमंडलीय कार्बन को स्थिर करके जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में भी योगदान देता है।

परंपरागत जुताई एवं संरक्षण कृषि के प्रभावों की तुलना निम्न तालिका में प्रस्तुत की गई है:

मृदा गुण	परंपरागत जुताई	संरक्षण कृषि
जैविक कार्बन	समय के साथ घटता है	क्रमिक रूप से बढ़ता है
सूक्ष्मजैविक गतिविधि	जुताई से बाधित होती है	निरंतर बनी रहती है एवं बढ़ती है
मृदा संरचना	कठोर परत (Hardpan) बनने का खतरा	भुरभुरी एवं सरंध्र बनी रहती है
जल धारण क्षमता	अपेक्षाकृत कम	उल्लेखनीय रूप से अधिक
मृदा कटाव	अधिक जोखिम	काफी हद तक नियंत्रित
केंचुए एवं लाभकारी जीव	संख्या घट सकती है	संख्या एवं गतिविधि बढ़ती है

निरंतर मृदा अशांति के अभाव में केंचुए एवं अन्य लाभकारी जीव अपनी प्राकृतिक सुरंगों एवं आवासों को बनाए रखने में सक्षम होते हैं। ये सुरंगें मृदा में जल एवं वायु के प्राकृतिक संचार के लिए सूक्ष्म मार्ग तैयार करती हैं। इसी प्रकार माइकोराइज़ा कवक जैसे लाभकारी सूक्ष्मजीवों का नेटवर्क, जो बार-बार की जाने वाली जुताई से बाधित हो

ISSN: 3049-2211

सकता है, संरक्षण कृषि में अपेक्षाकृत अधिक अक्षुण्ण बना रहता है। इससे पौधों को पोषक तत्व एवं जल की उपलब्धता में सुधार होता है।

दीर्घकालिक अध्ययनों में पाया गया है कि कुछ वर्षों तक निरंतर संरक्षण कृषि अपनाने पर मृदा की ऊपरी सतह में जैविक कार्बन की मात्रा उल्लेखनीय रूप से बढ़ सकती है। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव मृदा की उर्वरता, पोषक तत्व धारण क्षमता एवं जल संग्रहण में सुधार के रूप में दिखाई देता है। यह वृद्धि क्रमिक होती है—प्रथम एक-दो वर्षों में परिवर्तन सीमित दिखाई दे सकता है, किंतु चार-पाँच वर्षों तक निरंतर संरक्षण कृषि अपनाने के बाद मृदा स्वास्थ्य में स्पष्ट एवं मापने योग्य सुधार देखा जा सकता है।

इसीलिए संरक्षण कृषि को अपनाते समय किसानों को धैर्य रखने तथा इसे एक दीर्घकालिक निवेश के रूप में देखने की आवश्यकता है, न कि केवल एक-दो मौसम में तत्काल परिणाम प्राप्त करने की अपेक्षा करनी चाहिए।

अतिरिक्त लाभ

संरक्षण कृषि से मृदा स्वास्थ्य में सुधार के साथ-साथ कृषि की लागत, संसाधन उपयोग एवं पर्यावरणीय स्थिरता से जुड़े अनेक अतिरिक्त लाभ प्राप्त होते हैं:

- ✓ जुताई की आवृत्ति कम होने से ईंधन, श्रम एवं मशीनरी से संबंधित लागत में उल्लेखनीय कमी आती है।
- ✓ मृदा में नमी संरक्षण बेहतर होने से सिंचाई की आवश्यकता कम होती है, जो विशेष रूप से जल-संकटग्रस्त क्षेत्रों के लिए लाभकारी है।
- ✓ दीर्घकाल में मृदा उर्वरता एवं जैविक कार्बन में वृद्धि होने से उर्वरकों की आवश्यकता तथा उनसे संबंधित लागत में कमी आ सकती है।
- ✓ फसल विविधीकरण से कीट एवं रोगों के जीवन-चक्र में व्यवधान उत्पन्न होता है, जिससे कीटनाशकों पर निर्भरता कम हो सकती है।
- ✓ मृदा में कार्बन संचयन के माध्यम से संरक्षण कृषि जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में योगदान देती है।

अपनाने में व्यावहारिक चुनौतियाँ

संरक्षण कृषि के अनेक लाभों के बावजूद, इसे व्यापक स्तर पर अपनाने में किसानों को कुछ व्यावहारिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है:

- ✓ शून्य जुताई के लिए आवश्यक विशेष सीड-ड्रिल मशीनों, जैसे हैप्पी सीडर, की प्रारंभिक लागत एवं उपलब्धता।
- ✓ संक्रमण काल में खरपतवार प्रबंधन की चुनौती, क्योंकि जुताई के माध्यम से खरपतवार नियंत्रण की पारंपरिक व्यवस्था उपलब्ध नहीं रहती।
- ✓ परंपरागत जुताई की मानसिकता एवं आदत से हटकर नई पद्धति अपनाने में किसानों की प्रारंभिक झिझक।
- ✓ फसल अवशेषों की पशु चारे एवं अन्य उपयोगों के लिए प्रतिस्पर्धी माँग, जिसके कारण मृदा आवरण के लिए पर्याप्त अवशेष उपलब्ध नहीं रह पाते।
- ✓ संक्रमण काल के दौरान उपज में अस्थायी उतार-चढ़ाव की संभावना।

इन चुनौतियों के समाधान के लिए किसानों को उपयुक्त मशीनरी की सुलभता, तकनीकी प्रशिक्षण, प्रदर्शन प्रक्षेत्रों के माध्यम से व्यावहारिक अनुभव तथा प्रारंभिक चरण में आवश्यक नीतिगत प्रोत्साहन उपलब्ध कराना महत्वपूर्ण है।

विशेष रूप से खरपतवार प्रबंधन की चुनौती पर ध्यान देना आवश्यक है, क्योंकि जुताई के अभाव में खरपतवार नियंत्रण की पारंपरिक विधि उपलब्ध नहीं रहती। इसके समाधान के लिए फसल अवशेषों का पर्याप्त आवरण, उपयुक्त फसल चक्र तथा आवश्यकता के अनुसार चयनित शाकनाशियों का सीमित एवं वैज्ञानिक उपयोग सहायक हो सकता है। प्रारंभिक एक-दो वर्षों में खरपतवार प्रबंधन पर विशेष ध्यान देने से आगे चलकर मृदा आवरण एवं फसल प्रतिस्पर्धा के कारण खरपतवार की समस्या काफी हद तक नियंत्रित हो सकती है। परिणामस्वरूप, दीर्घकाल में यह चुनौती धीरे-धीरे कम होती जाती है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य

भारत में संरक्षण कृषि, विशेषकर उत्तर भारत के धान–गेहूँ फसल चक्र वाले क्षेत्रों में, हैप्पी सीडर एवं ज़ीरो-टिल ड्रिल जैसी मशीनों के माध्यम से तेजी से अपनाई जा रही है। इससे न केवल मृदा स्वास्थ्य में सुधार हुआ है, बल्कि फसल अवशेष जलाने (पराली जलाने) की समस्या को कम करने में भी सहायता मिली है। इस पद्धति में फसल अवशेषों को जलाने के बजाय मृदा आवरण के रूप में उपयोग किया जाता है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) एवं राज्य कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा विभिन्न कृषि-जलवायु क्षेत्रों के लिए संरक्षण कृषि की क्षेत्र-विशेष सिफारिशें विकसित की जा रही हैं।

आगे बढ़ते हुए, यदि किसानों को उपयुक्त मशीनरी, तकनीकी प्रशिक्षण एवं प्रारंभिक प्रोत्साहन उपलब्ध कराया जाए, तो संरक्षण कृषि भारतीय कृषि को अधिक टिकाऊ, किफायती एवं जलवायु-सहनशील बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। यह पद्धति मृदा स्वास्थ्य,

जल संरक्षण एवं उत्पादन लागत—तीनों स्तरों पर एक साथ लाभ प्रदान करने की क्षमता रखती है, जो इसे आने वाले वर्षों की एक महत्वपूर्ण कृषि रणनीति बनाती है।

इसके साथ ही, संरक्षण कृषि को कृषि विज्ञान केन्द्रों एवं किसान उत्पादक संगठनों (FPOs) के माध्यम से सामूहिक स्तर पर बढ़ावा देने से इसके प्रभावी प्रसार की संभावना बढ़ती है। जब पड़ोसी किसान एक-दूसरे के अनुभव साझा करते हैं तथा साझा मशीनरी एवं संसाधनों का उपयोग करते हैं, तो प्रारंभिक निवेश एवं तकनीकी बाधाएँ काफी हद तक कम हो सकती हैं। इस प्रकार, व्यक्तिगत प्रयासों की तुलना में सामुदायिक दृष्टिकोण संरक्षण कृषि के व्यापक एवं शीघ्र प्रसार में अधिक प्रभावी सिद्ध हो सकता है।

निष्कर्ष

संरक्षण कृषि मृदा स्वास्थ्य के संरक्षण एवं पुनरुद्धार का एक वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक मार्ग प्रस्तुत करती है। न्यूनतम जुताई, स्थायी मृदा आवरण एवं फसल विविधीकरण—इन तीन मूल सिद्धांतों को अपनाकर किसान मृदा की भौतिक संरचना, जैविक कार्बन एवं सूक्ष्मजैविक स्वास्थ्य में दीर्घकालिक सुधार ला सकते हैं। साथ ही, उत्पादन लागत को कम करके एवं जल संरक्षण को बढ़ावा देकर आय तथा संसाधन उपयोग दक्षता में भी सुधार किया जा सकता है।

इसके व्यापक क्रियान्वयन के लिए उपयुक्त मशीनरी की सुलभता, तकनीकी प्रशिक्षण एवं प्रभावी नीतिगत सहयोग आवश्यक है। यदि अनुसंधान संस्थान, शासन एवं कृषक समुदाय मिलकर इस दिशा में समन्वित प्रयास करें, तो संरक्षण कृषि भारतीय कृषि को अधिक उत्पादक, टिकाऊ एवं पर्यावरण-अनुकूल बनाने में निर्णायक भूमिका निभा सकती है।

वास्तव में, “कम जुताई से अधिक स्वस्थ मिट्टी” ही संरक्षण कृषि का मूल संदेश और भविष्य की टिकाऊ कृषि की एक महत्वपूर्ण कुंजी है।

■■■

जलवायु-स्मार्ट कृषि के लिए फसल सुधार में आधुनिक पादप प्रजनन तकनीकों की भूमिका

डॉ. सरिता कुमारी
सहायक आचार्य,
पादप जैव प्रौद्योगिकी विभाग, कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान, भारत

जलवायु परिवर्तन के कारण सूखा, अत्यधिक तापमान, अनियमित वर्षा एवं बाढ़ जैसी परिस्थितियाँ वैश्विक खाद्य सुरक्षा के लिए गंभीर चुनौती बनती जा रही हैं। पादप प्रजनन इन चुनौतियों के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि इसके माध्यम से ऐसी फसल किस्मों का विकास किया जा सकता है, जो विभिन्न जलवायु-प्रेरित तनावों के प्रति अधिक सहनशील हों। मार्कर सहायित चयन, जीनोमिक चयन, CRISPR/Cas9 जीन संपादन, स्पीड ब्रीडिंग एवं उच्च-थ्रूपुट फीनोटाइपिंग जैसी आधुनिक तकनीकों ने फसल सुधार की गति एवं सटीकता में महत्वपूर्ण परिवर्तन किया है। इन तकनीकों के माध्यम से जलवायु-सहनशील गुणों की पहचान, चयन एवं लक्षित सुधार अधिक प्रभावी ढंग से किया जा सकता है।

यह लेख जलवायु-स्मार्ट कृषि के लिए फसल सुधार में उपयोग की जाने वाली प्रमुख आधुनिक पादप प्रजनन तकनीकों की समीक्षा प्रस्तुत करता है, जिनमें मार्कर सहायित चयन, जीनोमिक चयन, जीन संपादन, स्पीड ब्रीडिंग, डबल हैप्लॉइड तकनीक तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित चयन प्रमुख हैं। लेख में धान में **Sub1** जीन के उपयोग तथा गेहूँ एवं सोयाबीन में स्पीड ब्रीडिंग के प्रलेखित परिणामों को भी सम्मिलित किया गया है। समग्र रूप से, इन आधुनिक तकनीकों का समेकित उपयोग, निरंतर अनुसंधान एवं विकास तथा प्रभावी नीतिगत समर्थन जलवायु-सहनशील, उच्च-उत्पादक एवं गुणवत्तापूर्ण फसल किस्मों के त्वरित विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

प्रस्तावना

जलवायु परिवर्तन वैश्विक कृषि के समक्ष एक गंभीर चुनौती प्रस्तुत कर रहा है। बढ़ती सूखा एवं लू की घटनाएँ, अनियमित वर्षा, अत्यधिक तापमान तथा बाढ़ जैसी परिस्थितियाँ फसल वृद्धि एवं उत्पादकता को प्रभावित कर रही हैं और खाद्य सुरक्षा पर दबाव बढ़ा रही हैं। पादप प्रजनन इस चुनौती के समाधान का एक महत्वपूर्ण माध्यम है, क्योंकि इसके द्वारा ऐसी फसल किस्मों का विकास किया जा सकता है, जो जलवायु-प्रेरित विभिन्न तनावों को सहन करने में सक्षम हों। परंपरागत रूप से पादप प्रजनन मुख्यतः दृश्य लक्षणों अथवा फीनोटाइप के आधार पर चयन पर निर्भर रहा है। हालांकि, यह प्रक्रिया अपेक्षाकृत समय-साध्य है और जटिल तथा बहु-जीन नियंत्रित लक्षणों के सुधार में इसकी प्रभावशीलता सीमित हो सकती है।

पिछले कुछ दशकों में डीएनए मार्कर आधारित रणनीतियों के विकास ने कृषि की दृष्टि से महत्वपूर्ण गुणों के चयन को अधिक सटीक बनाया है। वर्तमान में इन रणनीतियों को पॉलिमरेज़ चेन रिएक्शन (PCR), उच्च-थ्रूपुट जीनोटाइपिंग एवं फीनोटाइपिंग, फसल आकारिकी एवं शरीरक्रियात्मक आँकड़ों, सांख्यिकीय विश्लेषण, बायोइन्फॉर्मेटिक्स

ISSN: 3049-2211

तथा मशीन लर्निंग जैसे उन्नत उपकरणों का समर्थन प्राप्त है। इन तकनीकों के समन्वित उपयोग से जटिल जलवायु-सहनशील गुणों की पहचान एवं चयन अधिक प्रभावी ढंग से किया जा सकता है।

इस लेख में जलवायु-स्मार्ट कृषि के लिए फसल सुधार में उपयोग की जाने वाली प्रमुख आधुनिक पादप प्रजनन तकनीकों का विवेचन किया गया है। साथ ही, इन तकनीकों के माध्यम से जलवायु-सहनशील फसल किस्मों के विकास, उनकी उपयोगिता तथा भविष्य की संभावनाओं पर चर्चा की गई है।

जलवायु-स्मार्ट फसल सुधार की आवश्यकता

जलवायु परिवर्तन प्रमुख खाद्यान्न फसलों की उत्पादकता एवं स्थिरता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रहा है। धान, गेहूँ एवं मक्का जैसी प्रमुख फसलों में तापमान वृद्धि, जल की कमी, अनियमित वर्षा तथा जलभराव जैसी परिस्थितियाँ वृद्धि, प्रजनन एवं उपज निर्माण को प्रभावित कर सकती हैं। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में खाद्य उत्पादन की स्थिरता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना बढ़ रही है।

पारंपरिक प्रजनन विधियाँ, जैसे चयनात्मक प्रजनन एवं उत्परिवर्तन प्रजनन, उपयोगी जीन एवं लक्षणों को नई किस्मों में सम्मिलित करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक समय ले सकती हैं। इसके विपरीत, आधुनिक जीनोमिक एवं जीन-संपादन तकनीकें वांछित आनुवंशिक परिवर्तन की पहचान एवं लक्षित सुधार को अधिक सटीक तथा तीव्र बनाती हैं। विशेष रूप से CRISPR आधारित जीन संपादन द्वारा जीनोम के विशिष्ट क्षेत्रों में लक्षित परिवर्तन करना संभव हुआ है।

जलवायु परिवर्तन की गति को देखते हुए ऐसी प्रजनन रणनीतियों की आवश्यकता है, जो कम समय में सूखा, ताप, जलभराव, लवणता एवं अन्य जैविक तथा अजैविक तनावों के प्रति सहनशील फसल किस्मों का विकास कर सकें। इस दृष्टि से आधुनिक पादप प्रजनन तकनीकें जलवायु-स्मार्ट कृषि की आधारभूत तकनीकों के रूप में महत्वपूर्ण होती जा रही हैं।

प्रमुख आधुनिक पादप प्रजनन तकनीकें

जलवायु-स्मार्ट फसल सुधार में विभिन्न आधुनिक प्रजनन तकनीकों का उपयोग अलग-अलग अथवा एक-दूसरे के पूरक रूप में किया जाता है। इनका उद्देश्य उपयोगी जीन एवं लक्षणों की पहचान, चयन तथा उनका तीव्रता से अभिग्रहण करना है।

✓ **मार्कर सहायित चयन (Marker-Assisted Selection):** मार्कर सहायित चयन (MAS) में डीएनए मार्करों की सहायता से वांछित लक्षणों से संबंधित जीन अथवा क्वांटिटेटिव ट्रेट लोकाई (QTL) की पहचान एवं चयन किया जाता है। इससे पौधों के

चित्र 1: जलवायु-स्मार्ट फसल सुधार में उपयोग होने वाली प्रमुख आधुनिक पादप प्रजनन तकनीकें।

वयस्क होने या संबंधित लक्षण के स्पष्ट रूप से व्यक्त होने की प्रतीक्षा किए बिना आनुवंशिक स्तर पर चयन करना संभव होता है।

धान में जलमग्नता सहनशीलता के लिए SUB1 QTL एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। यह QTL लैंडरेस FR13A से प्राप्त हुआ है और पूर्ण जलमग्नता की परिस्थितियों में लगभग 2–3 सप्ताह तक पौधों की सहनशीलता बढ़ाने में सक्षम है। मूल अध्ययन में SUB1 क्षेत्र को जलमग्नता सहनशीलता में फीनोटाइपिक भिन्नता के बड़े हिस्से से संबद्ध पाया गया था। इसका उपयोग लोकप्रिय धान किस्मों, जैसे स्वर्णा एवं सिहेरंग, में सहनशीलता सुधार के लिए मार्कर सहायित बैकक्रॉस ब्रीडिंग (MABB) कार्यक्रमों में किया गया है। इस प्रकार MAS जलवायु-संबंधी विशिष्ट लक्षणों को लक्षित रूप से स्थानांतरित करने में उपयोगी तकनीक है।

✓ **जीनोमिक चयन (Genomic Selection):** जीनोमिक चयन (GS) आधुनिक आनुवंशिक प्रजनन की एक उन्नत रणनीति है, जिसमें पूरे जीनोम में फैले बड़ी संख्या में आणविक मार्करों का उपयोग करके जटिल लक्षणों के आनुवंशिक मूल्य का अनुमान लगाया जाता है। उपज, सूखा सहनशीलता, ताप सहनशीलता एवं अन्य बहु-जीन नियंत्रित लक्षणों के सुधार में यह तकनीक विशेष रूप से उपयोगी हो सकती है।

GS में जीनोटाइप तथा फीनोटाइप से प्राप्त बड़े आँकड़ों के आधार पर प्रजनन मूल्य (Breeding Value) का अनुमान लगाया जाता है। इससे ऐसे पौधों का प्रारंभिक स्तर पर चयन संभव होता है, जिनमें वांछित आनुवंशिक क्षमता होने की संभावना अधिक हो। स्पीड ब्रीडिंग, मशीन लर्निंग तथा पर्यावरणीय आँकड़ों के साथ GS

का एकीकरण प्रजनन कार्यक्रमों को और अधिक प्रभावी बनाता है तथा समय एवं संसाधनों की बचत में सहायता करता है।

- **CRISPR/Cas9 जीन संपादन:** CRISPR/Cas9 तकनीक ने पौधों में लक्षित एवं अपेक्षाकृत सटीक आनुवंशिक परिवर्तन की संभावना को व्यापक बनाया है। इस तकनीक के माध्यम से किसी विशिष्ट जीन को निष्क्रिय करने, उसकी कार्यक्षमता में परिवर्तन करने अथवा वांछित आनुवंशिक गुणों को विकसित करने का प्रयास किया जा सकता है। Cas9 के अतिरिक्त Cas12, Cas13 एवं अन्य Cas प्रणालियों के विकास ने जीनोम संपादन के संभावित अनुप्रयोगों का विस्तार किया है।

  बेस एडिटिंग एवं प्राइम एडिटिंग जैसी उन्नत प्रणालियाँ जीनोम में अधिक सूक्ष्म एवं लक्षित परिवर्तन करने की क्षमता प्रदान करती हैं। जलवायु-स्मार्ट फसल सुधार में इनका उपयोग सूखा, ताप, लवणता एवं अन्य अजैविक तनावों के प्रति सहनशीलता से जुड़े जीनों के लक्षित सुधार के लिए किया जा सकता है। CRISPR तकनीक को स्पीड ब्रीडिंग, जीनोमिक चयन एवं कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित विश्लेषण के साथ जोड़ने से भविष्य में अधिक सटीक एवं तीव्र फसल सुधार की संभावनाएँ बढ़ती हैं।

- **स्पीड ब्रीडिंग (त्वरित प्रजनन):** स्पीड ब्रीडिंग एक ऐसी तकनीक है, जिसमें नियंत्रित पर्यावरणीय परिस्थितियों, विस्तारित प्रकाश अवधि, उपयुक्त तापमान एवं अनुकूल प्रकाश तीव्रता का उपयोग करके पौधों में शीघ्र वृद्धि एवं पुष्पन को प्रेरित किया जाता है। इसका प्रमुख उद्देश्य एक वर्ष में अधिक प्रजनन पीढ़ियाँ प्राप्त करके नई किस्मों के विकास में लगने वाले समय को कम करना है।

  यह तकनीक पहले नियंत्रित परिस्थितियों में गेहूँ जैसे फसलों के प्रजनन को तीव्र करने के लिए विकसित की गई थी और वर्तमान में गेहूँ, जौ, सोयाबीन, मटर, कैनोला एवं चना सहित विभिन्न फसलों में इसका उपयोग किया जा रहा है। स्पीड ब्रीडिंग को जीनोमिक चयन एवं जीन संपादन जैसी तकनीकों के साथ जोड़ने से उपयोगी आनुवंशिक संयोजनों को कम समय में अगली पीढ़ियों तक पहुँचाने में सहायता मिल सकती है।

- **उच्च-थ्रूपुट फीनोटाइपिंग एवं डबल हैप्लॉइड तकनीक:** उच्च-थ्रूपुट फीनोटाइपिंग में सेंसर, डिजिटल इमेजिंग, स्वचालित प्रणालियों एवं अन्य उन्नत उपकरणों की सहायता से बड़ी संख्या में पौधों के आकारिकीय एवं शरीरक्रियात्मक लक्षणों का तीव्र मापन किया जाता है। इससे सूखा, ताप एवं अन्य पर्यावरणीय तनावों के प्रति पौधों की प्रतिक्रियाओं का अधिक व्यापक एवं सटीक मूल्यांकन संभव होता है।

  डबल हैप्लॉइड तकनीक अगुणित कोशिकाओं से पूर्णतः समयुग्मजी पौध पंक्तियों के शीघ्र विकास में सहायक होती है। पारंपरिक प्रजनन में आनुवंशिक रूप से स्थिर एवं शुद्ध पंक्तियाँ तैयार करने में कई पीढ़ियाँ लग सकती हैं, जबकि डबल हैप्लॉइड तकनीक इस प्रक्रिया को काफी कम समय में पूरा करने में सहायता करती है। इसलिए यह आधुनिक प्रजनन कार्यक्रमों में स्थिर एवं उपयोगी जीनोटाइप के त्वरित विकास के लिए महत्वपूर्ण तकनीक है।

तकनीकों का समेकित विवरण

जलवायु-स्मार्ट फसल सुधार में विभिन्न आधुनिक तकनीकों को एकीकृत रूप से अपनाने से चयन की गति, सटीकता एवं दक्षता में सुधार किया जा सकता है। प्रमुख तकनीकों, उनकी कार्यप्रणाली तथा जलवायु-स्मार्ट कृषि में उनके संभावित अनुप्रयोगों का सारांश तालिका 1 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका 1: जलवायु-स्मार्ट फसल सुधार हेतु प्रमुख आधुनिक पादप प्रजनन तकनीकें

तकनीक	कार्यप्रणाली	जलवायु-स्मार्ट अनुप्रयोग
मार्कर सहायित चयन (MAS)	डीएनए मार्करों द्वारा वांछित जीन/QTL की पहचान एवं चयन	बाढ़-सहनशील Sub1 एवं सूखा-सहनशील QTL जैसे लक्षणों का चयन
जीनोमिक चयन (GS)	पूरे जीनोम में फैले मार्करों से जटिल गुणों के आनुवंशिक मूल्य का अनुमान	उपज एवं तनाव-सहनशीलता जैसे बहु-जीन नियंत्रित गुणों का शीघ्र चयन
CRISPR/Cas जीन संपादन	लक्षित जीन में सटीक आनुवंशिक परिवर्तन	सूखा, ताप एवं लवणता सहनशीलता सहित वांछित गुणों का लक्षित सुधार
स्पीड ब्रीडिंग	नियंत्रित प्रकाश एवं तापमान द्वारा पीढ़ी-चक्र को छोटा करना	प्रति वर्ष अधिक पीढ़ियाँ प्राप्त कर किस्म विकास में लगने वाला समय कम करना
उच्च-थ्रूपुट फीनोटाइपिंग	सेंसर एवं इमेजिंग से बड़े पैमाने पर पौध लक्षणों का तीव्र मापन	सूखा एवं ताप सहनशीलता से जुड़े आकारिकीय एवं शरीरक्रियात्मक गुणों की पहचान

ISSN: 3049-2211

डबल हैप्लॉइड तकनीक	अगुणित कोशिकाओं से शीघ्र समयुग्मजी पौध पंक्तियों का विकास	स्थिर एवं शुद्ध जलवायु-सहनशील जीनोटाइप का शीघ्र निर्माण
जीनोम-वाइड एसोसिएशन अध्ययन (GWAS)	जीनोटाइप एवं फीनोटाइप के संबंधों का जीनोम स्तर पर विश्लेषण	जलवायु-सहनशीलता से जुड़े नए जीन एवं QTL की पहचान
AI एवं मशीन लर्निंग आधारित चयन	जीनोमिक, फीनोटाइपिक एवं पर्यावरणीय आँकड़ों का विश्लेषण	प्रजनन मूल्य एवं वांछित लक्षणों की अधिक सटीक भविष्यवाणी

जलवायु-सहनशील किस्म विकास की प्रक्रिया

जलवायु-सहनशील फसल किस्मों के विकास के लिए आधुनिक पादप प्रजनन में जननद्रव्य संग्रह से लेकर अंतिम किस्म के क्षेत्रीय परीक्षण एवं विमोचन तक एक क्रमबद्ध प्रक्रिया अपनाई जाती है। चित्र 2 में इस प्रक्रिया को पाँच प्रमुख चरणों में दर्शाया गया है—जननद्रव्य संग्रह एवं लक्षण-वर्णन, जीनोमिक/मार्कर विश्लेषण, चयन एवं जीन संपादन, स्पीड ब्रीडिंग द्वारा त्वरित पीढ़ी उन्नयन तथा अंततः क्षेत्र परीक्षण एवं किस्म विमोचन।

चित्र 2: जलवायु-सहनशील किस्म विकसित करने की आधुनिक प्रजनन प्रक्रिया।

यह समन्वित प्रक्रिया पारंपरिक 'श्रेष्ठ को श्रेष्ठ से पार कराओ और प्रतीक्षा करो' आधारित रणनीति की तुलना में अधिक तीव्र एवं सटीक है। मार्कर आधारित चयन द्वारा वांछित जीन अथवा QTL की पहचान प्रारंभिक अवस्था में की जा सकती है, जबकि जीन संपादन तकनीकें विशिष्ट जीन में लक्षित परिवर्तन करने की क्षमता प्रदान करती हैं। इसके साथ स्पीड ब्रीडिंग का उपयोग करके प्रजनन पीढ़ियों को तेजी से आगे बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार विभिन्न तकनीकों का एकीकृत उपयोग जलवायु-संबंधी महत्वपूर्ण कृषि लक्षणों के सुधार को अधिक प्रभावी बना सकता है।

प्रलेखित साक्ष्य: धान में जलमग्नता एवं सूखा सहनशीलता

मार्कर सहायित चयन के व्यावहारिक प्रभाव का एक महत्वपूर्ण उदाहरण धान में SUB1 QTL का उपयोग है। एक अध्ययन में लोकप्रिय धान किस्म Improved White Ponni (IWP) में सूखा सहनशीलता से संबंधित qDTY1.1 एवं qDTY2.1, लवणता सहनशीलता से संबंधित Saltol तथा जलमग्नता सहनशीलता से संबंधित Sub1 QTL के पिरामिडिंग द्वारा बैकक्रॉस इनब्रेड लाइनों (BILs) का विकास किया गया। 12 दिनों की जलमग्नता के बाद दाता किस्म FR13A तथा BIL पंक्तियों की पत्तियाँ हरी बनी रहीं और जल निकासी के बाद इनमें 66–80% पुनर्जीवन दर्ज किया गया, जबकि मूल किस्म IWP में जल निकासी के बाद जीवितता 0% रही।

एक अन्य अध्ययन में धान की किस्म CBMAS 14065 में सूखा, लवणता, जलमग्नता, जीवाणु अंगमारी, ब्लास्ट एवं गॉल मिज सहनशीलता से संबंधित आठ प्रमुख QTL/जीनों का पिरामिडिंग किया गया। FR13A से प्राप्त Sub1 लोकस वाले सभी 14 संततियों ने लगभग दो सप्ताह की जलमग्नता/बाढ़ के बाद 90–95% जीवितता प्रदर्शित की, जबकि मूल किस्म में अत्यधिक संवेदनशीलता दर्ज की गई। यह उदाहरण दर्शाता है कि मार्कर सहायित प्रजनन के माध्यम से एक ही जीनोटाइप में विभिन्न तनाव-सहनशील लक्षणों का समावेशन संभव है।

प्रलेखित साक्ष्य: स्पीड ब्रीडिंग द्वारा प्रजनन चक्र में तीव्रता

स्पीड ब्रीडिंग तकनीक के प्रभाव को विभिन्न अध्ययनों में मात्रात्मक रूप से प्रदर्शित किया गया है। नियंत्रित पर्यावरणीय परिस्थितियों में प्रकाश अवधि, तापमान एवं प्रकाश तीव्रता को अनुकूलित करके गेहूँ में प्रति वर्ष लगभग 4–6 पीढ़ियाँ प्राप्त की जा सकती हैं, जबकि पारंपरिक क्षेत्र-आधारित प्रजनन में सामान्यतः 1–2 पीढ़ियाँ ही प्राप्त होती हैं। इससे नई प्रजनन सामग्री के विकास एवं चयन की गति में उल्लेखनीय वृद्धि होती है।

शीतकालीन गेहूँ एवं जौ के लिए विकसित स्पीड वर्नलाइजेशन प्रोटोकॉल के माध्यम से प्रति वर्ष लगभग 5 पीढ़ियाँ प्राप्त की गईं, जबकि मानक वर्नलाइजेशन व्यवस्था में सामान्यतः लगभग 2 पीढ़ियाँ ही पूर्ण हो पाती हैं। इस प्रकार वर्नलाइजेशन एवं प्रकाश-आधारित प्रबंधन को अनुकूलित करके पीढ़ी उन्नयन की अवधि को कम किया जा सकता है। एकीकृत स्पीड ब्रीडिंग प्रणाली के एक अध्ययन में गेहूँ की किस्म 'Irum' में F1 से F5 पीढ़ी केवल 15 माह में प्राप्त की गई। इससे कुल

ISSN: 3049-2211

प्रजनन चक्र की अवधि 128 माह से घटकर लगभग 80 माह रह गई, जिससे लगभग 4 वर्षों की समय बचत हुई। इसी प्रकार, सोयाबीन में 22 घंटे की दीर्घ प्रकाश अवधि (LD-22h) अपनाने पर प्रति वर्ष लगभग 6 पीढ़ियाँ प्राप्त की जा सकीं। ये परिणाम दर्शाते हैं कि स्पीड ब्रीडिंग आधुनिक प्रजनन कार्यक्रमों में समय की बचत एवं नई किस्मों के त्वरित विकास के लिए अत्यंत उपयोगी तकनीक है।

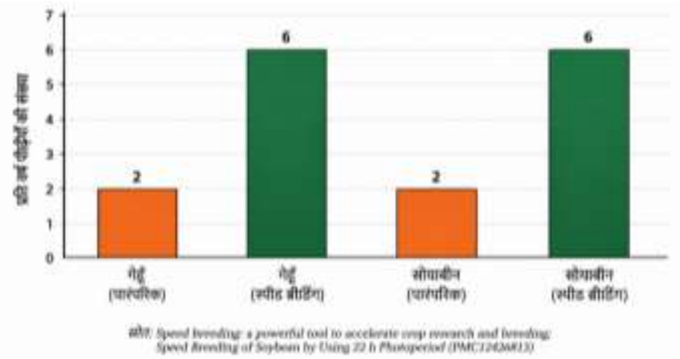

चित्र 3: स्पीड ब्रीडिंग द्वारा प्रति वर्ष प्राप्त होने वाली पीढ़ियों की संख्या में वृद्धि।

उपरोक्त प्रलेखित परिणामों का समेकित सारांश तालिका 2 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका 2: आधुनिक पादप प्रजनन तकनीकों के प्रलेखित परिणाम

तकनीक / अध्ययन	प्रलेखित परिणाम	स्रोत
Sub1 QTL का मार्कर सहायित समावेशन (धान)	Sub1 QTL जलमग्नता सहनशीलता में लगभग 69–70% भिन्नता से संबद्ध; पूर्ण जलमग्नता में 2–3 सप्ताह तक सहनशीलता	Xu and Mackill, 1996; PMC5670188
qDTY QTL पिरामिडिंग (धान, IWP)	12 दिन जलमग्नता के बाद FR13A एवं BIL पंक्तियों में 66–80% पुनर्जीवन, जबकि मूल IWP में 0%	PLOS ONE, PMC6946594
बहु-तनाव सहनशील धान (CBMAS 14065)	Sub1 युक्त 14 संततियों में 2 सप्ताह जलमग्नता के बाद 90–95% जीवितता	PubMed 39070911
स्पीड ब्रीडिंग—गेहूँ	नियंत्रित दीर्घ प्रकाश अवधि से प्रति वर्ष 4–6 पीढ़ियाँ, जबकि पारंपरिक व्यवस्था में 1–2 पीढ़ियाँ	Speed Breeding study; PMC12844831
स्पीड वर्नलाइजेशन—शीत गेहूँ/जौ	प्रति वर्ष लगभग 5 पीढ़ियाँ, जबकि मानक वर्नलाइजेशन में लगभग 2 पीढ़ियाँ	ScienceDirect, Speed Vernalization study
एकीकृत स्पीड ब्रीडिंग—गेहूँ 'Irum'	F1 से F5 पीढ़ी 15 माह में; कुल प्रजनन चक्र 128 से घटकर 80 माह	PMC13465043
स्पीड ब्रीडिंग—सोयाबीन	22 घंटे प्रकाश अवधि (LD-22h) के प्रयोग से प्रति वर्ष 6 पीढ़ियाँ	PMC12426813

जलवायु-स्मार्ट फसल सुधार के लाभ

आधुनिक पादप प्रजनन तकनीकों के समुचित एकीकरण से जलवायु-स्मार्ट फसल सुधार में अनेक महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं। मार्कर सहायित चयन एवं जीनोमिक चयन वांछित आनुवंशिक गुणों की शीघ्र पहचान एवं चयन में सहायता करते हैं, जिससे प्रजनन कार्यक्रमों की दक्षता बढ़ती है। विशेष रूप से जटिल एवं बहु-जीन नियंत्रित लक्षणों के लिए जीनोमिक चयन उपयोगी हो सकता है।

CRISPR/Cas9 जैसे जीनोम संपादन उपकरण विशिष्ट जीन में लक्षित परिवर्तन की संभावना प्रदान करते हैं, जिससे ऐसे गुणों में सुधार किया जा सकता है जिन्हें पारंपरिक प्रजनन द्वारा सुधारना अपेक्षाकृत कठिन होता है। दूसरी ओर, स्पीड ब्रीडिंग द्वारा प्रति वर्ष अधिक प्रजनन पीढ़ियाँ प्राप्त करके नई प्रजनन सामग्री एवं किस्मों के विकास में लगने वाला समय कम किया जा सकता है।

इन तकनीकों को उच्च-थ्रूपुट फीनोटाइपिंग, कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं मशीन लर्निंग जैसी तकनीकों के साथ जोड़ने से बड़े जीनोमिक, फीनोटाइपिक एवं पर्यावरणीय आँकड़ों का प्रभावी विश्लेषण संभव होता है। परिणामस्वरूप जलवायु-सहनशीलता, उपज एवं गुणवत्ता जैसे महत्वपूर्ण लक्षणों के लिए अधिक सटीक चयन किया जा सकता है। इस प्रकार आधुनिक तकनीकों का समन्वित उपयोग तेजी से बदलती जलवायु परिस्थितियों के अनुरूप नई फसल किस्मों के विकास को गति प्रदान कर सकता है।

चुनौतियाँ

आधुनिक पादप प्रजनन तकनीकों में उल्लेखनीय प्रगति के बावजूद इनके व्यापक एवं प्रभावी उपयोग में कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

1. **नियामकीय एवं नैतिक चुनौतियाँ:** जीनोम संपादित फसलों के संबंध में सार्वजनिक धारणा, नियामकीय व्यवस्थाएँ एवं नैतिक विचार विभिन्न देशों में अलग-अलग हैं। इससे कुछ परिस्थितियों में

जीन-संपादित फसलों के परीक्षण एवं व्यावसायिक उपयोग में विलंब हो सकता है।

2. **उच्च लागत:** उच्च-थ्रूपुट जीनोटाइपिंग, फीनोटाइपिंग एवं नियंत्रित पर्यावरण सुविधाओं की स्थापना एवं संचालन के लिए पर्याप्त वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता होती है। इससे छोटे एवं सीमित संसाधनों वाले अनुसंधान संस्थानों के लिए इन तकनीकों को अपनाना चुनौतीपूर्ण हो सकता है।
3. **बड़े एवं गुणवत्तापूर्ण आँकड़ों की आवश्यकता:** जटिल, बहु-जीन नियंत्रित गुणों के लिए विश्वसनीय जीनोमिक भविष्यवाणी मॉडल विकसित करने हेतु पर्याप्त एवं गुणवत्तापूर्ण जीनोटाइप-फीनोटाइप आँकड़ों की आवश्यकता होती है। ऐसे आँकड़े सभी फसलों एवं क्षेत्रों के लिए समान रूप से उपलब्ध नहीं हैं।
4. **विशेषज्ञ मानव संसाधन की आवश्यकता:** आणविक जीव विज्ञान, जीनोमिक्स, जैव-सूचना विज्ञान, फीनोटाइपिंग एवं डेटा विश्लेषण में प्रशिक्षित वैज्ञानिकों एवं तकनीकी विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है। प्रशिक्षित जनशक्ति की कमी तकनीकों के प्रभावी उपयोग को सीमित कर सकती है।
5. **प्रयोगशाला से खेत तक स्थानांतरण:** प्रयोगशाला या नियंत्रित वातावरण में प्राप्त परिणामों को वास्तविक खेत परिस्थितियों में सफलतापूर्वक लागू करने के लिए बहु-स्थान एवं बहु-वर्षीय क्षेत्र परीक्षण आवश्यक होते हैं। यह प्रक्रिया समय, संसाधन एवं व्यापक सत्यापन की मांग करती है।

आगे की राह

जलवायु-स्मार्ट फसल सुधार में आधुनिक पादप प्रजनन तकनीकों की पूर्ण क्षमता का उपयोग करने के लिए विभिन्न तकनीकों के बीच बेहतर समन्वय आवश्यक है। जीनोमिक चयन एवं CRISPR आधारित जीन संपादन को स्पीड ब्रीडिंग के साथ एकीकृत करने से वांछित आनुवंशिक परिवर्तनों के चयन एवं पीढ़ी उन्नयन की प्रक्रिया को और अधिक तीव्र किया जा सकता है। इसी प्रकार, उच्च-थ्रूपुट फीनोटाइपिंग एवं डिजिटल डेटा विश्लेषण को प्रजनन कार्यक्रमों में शामिल करने से जटिल जलवायु-सहनशील लक्षणों का अधिक सटीक मूल्यांकन संभव होगा।

विकासशील देशों में जीनोटाइपिंग, फीनोटाइपिंग एवं नियंत्रित पर्यावरण सुविधाओं तक अनुसंधान संस्थानों की पहुँच बढ़ाने के लिए क्षेत्रीय साझा सुविधा केंद्रों की स्थापना उपयोगी हो सकती है। इससे सीमित संसाधनों वाले संस्थानों को भी आधुनिक प्रजनन तकनीकों का उपयोग करने का अवसर मिलेगा।

जीनोम संपादित फसलों के लिए स्पष्ट, विज्ञान-आधारित एवं पारदर्शी नियामकीय ढाँचे का विकास भी आवश्यक है। इससे अनुसंधान, परीक्षण एवं अनुमोदन की प्रक्रियाओं में स्पष्टता आएगी और सुरक्षित एवं प्रभावी तकनीकों के कृषि उपयोग को उचित दिशा मिल सकेगी।

भविष्य में कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं मशीन लर्निंग को जीनोमिक, फीनोटाइपिक एवं पर्यावरणीय आँकड़ों के साथ एकीकृत करके प्रजनन निर्णयों की सटीकता को और बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार बहु-विषयक अनुसंधान, आधुनिक अवसंरचना, प्रशिक्षित मानव संसाधन एवं प्रभावी नीतिगत समर्थन जलवायु-सहनशील फसल किस्मों के त्वरित विकास की आधारशिला बनेंगे।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न बढ़ते सूखा, ताप, अनियमित वर्षा एवं जलमग्नता जैसे तनावों के बीच आधुनिक पादप प्रजनन तकनीकें जलवायु-स्मार्ट कृषि के लिए फसल सुधार का एक प्रभावी एवं वैज्ञानिक मार्ग प्रस्तुत करती हैं। मार्कर सहायित चयन, जीनोमिक चयन, CRISPR/Cas आधारित जीन संपादन, स्पीड ब्रीडिंग, उच्च-थ्रूपुट फीनोटाइपिंग एवं डबल हैप्लॉइड तकनीक ने फसल सुधार की गति, सटीकता एवं दक्षता को बढ़ाने की नई संभावनाएँ उत्पन्न की हैं।

धान में Sub1 आधारित जलमग्नता सहनशीलता तथा गेहूँ एवं सोयाबीन में स्पीड ब्रीडिंग द्वारा प्रजनन पीढ़ियों में वृद्धि जैसे प्रलेखित परिणाम इन तकनीकों की व्यावहारिक उपयोगिता को स्पष्ट करते हैं। हालांकि, इन तकनीकों का प्रभावी एवं व्यापक उपयोग उच्च लागत, विशेषज्ञ मानव संसाधन, गुणवत्तापूर्ण आँकड़ों की आवश्यकता, नियामकीय जटिलताओं तथा प्रयोगशाला से खेत तक तकनीक के सफल स्थानांतरण जैसी चुनौतियों से जुड़ा है।

अतः आधुनिक पादप प्रजनन तकनीकों का समेकित उपयोग, निरंतर अनुसंधान एवं विकास, सक्षम अवसंरचना, प्रशिक्षित मानव संसाधन तथा विज्ञान-आधारित नीतिगत समर्थन आवश्यक है। इन प्रयासों के माध्यम से जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक सहनशील, उच्च-उत्पादक एवं गुणवत्तापूर्ण फसल किस्मों का त्वरित विकास किया जा सकता है, जो भविष्य की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा को मजबूत करने में महत्वपूर्ण योगदान देगा।

■■■

कृषि नवाचार के विसरण एंव अंगीकरण में हिंदी भाषा की भूमिका

[1]**डॉ कल्याण सिंह-** अतिथि प्रवक्ता (उद्यान), [2]**डॉ शिवशंकर सिंह-** सह – प्राध्यापक उद्यान
[3]**डॉ नीतू-** सहायक प्राध्यापक (सब्जी विज्ञान), [4]**डॉ सत्यव्रत द्विवेदी-** प्राध्यापक (सब्जी विज्ञान)
[5]**डॉ धीरेन्द्र कुमार सिंह-** सहायक प्राध्यापक मूल एंव आधारीय विज्ञान, [6]**डॉ शिव अवतार सिंह-** अतिथि प्रवक्ता (कृषि प्रसार शिक्षा)
[1,2,6] महात्मा गांधी ग्रामोदय चित्रकूट विश्वविद्यालय, चित्रकूट (सतना) मध्य प्रदेश,
[3,4,5] बांदा कृषि एंव प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय बांदा (यूपी)

कृषि के सन्दर्भ में राजभाषा हिंदी की उपयोगिता एंव सार्थकता केवल हिंदी दिवस मनाने एंव हिन्दी पखवाड़ा के अंतर्गत विभिन्न कार्यक्रम आयोजित करके राजभाषा के प्रति सम्मान व्यक्त करने का अवसर नही है बल्कि कृषि शिक्षा, विज्ञान, अनुसंधान तथा प्रसार की गतिविधियों को राजभाषा हिंदी से जोड़ने, उसके प्रभावी उपयोग एंव व्यापक स्तर पर क्रियान्वयन करने के प्रति संकल्प लेने का दिन है। हिन्दी दिवस पर सबसे बड़ा संदेश यही है कि विज्ञान तथा अनुसंधान में अंतर्निहित शक्ति तभी पूर्ण एंव सार्थक होती है, जब वह किसान तथा समाज की भाषा बनती है। कृषि वैज्ञानिकों का ज्ञान एंव अनुसंधान किसानो के लिए तभी महत्वपूर्ण है जब वह प्रयोगशाला से विकसित, जनरल में प्रकाशित शोध पत्र प्रसार तंत्र के माध्यम से विश्विविद्यालय तथा प्रयोगशाला की चारदीवारी से निकलकर किसान के खेत तक पहुंचे और किसान उसे अपनी व्यवहारिक समझ के अनुसार अपने लिए उपयोगी समझकर उसे अंगीकृत करते हुए उस उन्नत तकनीक का सफल प्रयोग अपने खेतों पर करके उत्पादन, उत्पादकता के साथ – साथ अधिकतम लाभ को प्राप्त कर सकें।

"किसान आधारित अनुसंधान,
तभी खेत तक पहुचेंगा ज्ञान"

परिचय:

भाषा किसी भी समाज में संवाद का एक सशक्त माध्यम होती है जिसके आधार पर हम एक दूसरे से अपने सोच, ज्ञान, तथा अनुभव को साझा करते है। भारत देश भाषाओं और बोलियों की विविधिता वाला देश है यह विविधिता उनके सांस्कृतिक उत्सवों में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है कृषि आधारित वस्तुओ पर ही किसानों के सांस्कृतिक उत्सव निर्भर होते है। अत: यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगा कि कृषि केवल मानव जीवन का आधार ही नहीं अपितु मानव जीवन का संस्कार भी है। भारतीय कृषि ग्रामीण परिवेश एंव किसान आधारित है। आज भी गांवों की 65 प्रतिशत जनसंख्या अपनी आजीविका तथा रोजगार हेतु कृषि तथा उससे सहायक कृषि आधारित उद्योगों पर निर्भर है। भाषा तथा सांस्कृतिक विविधिता के कारण ही किसान अपने खेत–खलिहान, फसल, मौसम, जलवायु, रोग, व्याधि, कीट को प्राय: स्थानीय नामों से ही जानते है तथा उसी भाषा में किसान- वैज्ञानिकों से संवाद स्थापित करते है। अत: यह आवश्यक एंव महत्वपूर्ण बिन्दु है कि कृषि आधारित अनुसंधान तथा इस तकनीकी ज्ञान का किसानो के बीच हस्तान्तरण किसान की भाषा में हो जिससे किसानो के लिए नवाचार को अपनाने में सुग्राहिता तथा प्रयोग आसानी से हो सकें इसके अतिरिक्त

वैज्ञानिक–किसान संवाद भी सरल एंव सहज भाषा में स्थापित हो जिससे किसान अपनी समस्या को अपनी भाषा में वैज्ञानिकों से वार्तालाप द्वारा साझा कर सके और किसान के सोच एंव अनुभव आधारित ज्ञान का सदुपयोग करके वैज्ञानिक भी उसकी भाषा एंव समस्या के अनुरूप ही अनुसंधान करके "प्रयोगशाला से खेत तक" के लक्ष्य को साकार करते हुए प्रभावी प्रसार तंत्र के माध्यम से उस उन्नत नवाचार का सफल एंव प्रभावी प्रयोग किसानो के खेत तक हो सके। यह तभी संभव है जब विज्ञान तथा अनुसंधान की भाषा सहज, सरल एंव सर्वग्राही के सर्वमान्य गुण को अपने आप में समाहित किये हुए हो, जिससे उसका किसानो के साथ – साथ आम जनमानस को प्रभावी तरीके से मिल सके।

कृषि विज्ञान में भाषा कृषि वैज्ञानिकों एंव किसानो के बीच केवल संवाद का माध्यम नहीं है; अपितु यह हमारी सोच, अनुभव, ज्ञान एंव अभिव्यक्ति को एक दुसरे से जोड़ने वाली अति महत्पूर्ण कड़ी एंव अटूट शक्ति है। जब कृषि वैज्ञानिकों के ज्ञान, सोच, अनुभव, विज्ञान, अनुसंधान तथा प्रसार प्रणाली किसान के सन्मुख सरल एंव सहज भाषा में उपलब्ध नहीं होगा तब तक वैज्ञानिक नवाचार का विसरण तथा अंगीकरण किसान के खेत तक सफलतापूर्वक हस्तान्तरण नही किया जा सकता है उक्त स्थिति में वैज्ञानिक अनुसंधान केवल जनरल के प्रकाशित शोध पत्रों तक ही सीमित होकर रह जायेगा जिसकी उपयोगिता किसान को नही के बराबर होगी।

कृषि आधारित पारंपरिक ज्ञान पद्धति

भारत देश कृषि एंव ऋषि परम्परा से समृद्ध देश रहा है। भारत के ऋषियों द्वारा कृषि परम्परा की शुरुआत की गई जिसके अंतर्गत न माननीय मानवीय उपभोग के अलावा जल, जंगल, जमीन, जीव -जंतु, के साथ – साथ पर्यावरण संरक्षण के प्रति मानवीय चेतना का विकास निरंतर प्रवाहमान होता रहा। तत्कालीन समय में प्रचलित भाषाओं में ही ऋषि – महर्षियों द्वारा प्राकृतिक कृषि पद्धति विकसित किया गया जिसका उल्लेख प्राचीन भारतीय ग्रंथो में उल्लेखनीय है। अपने अनुभव, सोच, चिंतन एंव ज्ञान आधारित अनुसंधान द्वारा विज्ञान एंव प्रोद्योगिकी जैसे अभावग्रस्त दौर ऋषि पराशर द्वारा प्राकृतिक खेती के आधारित अनुभव ज्ञान किसानो के लिए संजीवनी की तरह कार्य किये। मौसम सम्बन्धी पूर्वानुमान के विद्वान् कृषि पंडित महाकवि घाघ एंव भंदुरी ने अपने अनुभव आधारित ज्ञान तथा हिंदी रचनाओं के द्वारा सरल एंव सहज भाषा में किसानो को मौसम आधारित खेती के साहित्य उपलब्ध कराए जिससे ग्रामीण कृषक समाज अत्यंत ही लाभान्वित हुआ जिसकी प्रासंगिकता आज भी शोध का विषय है। महाकवि घाघ एंव भंदुरी ने अपने अनुभव ज्ञान के आधार पर हिंदी भाषा में किसानो के लिए एक कविताओं का ग्रन्थ तैयार किया जिस भारतीय किसान एंव कृषि प्राचीन कृषि आधारित ज्ञान पद्धति निर्भर थी जिसकी चर्चा आज भी भारत के गाँवों में होती है और घाघ के प्रयोग एंव अनुभव सत्य साबित होते है। कालांतर में भारतीय ज्ञान परम्परा का उद्दरण एंव अंगीकरण करते हुए विदेशी वैज्ञानिकों ने रासायनिक उर्वरको के रूप में नये आविष्कार को जन्म दिया। इससे यह स्पष्ट परिलक्षित एंव प्रमाणित है कि प्राचीन कृषि ज्ञान पद्धति **"विज्ञान किसान की भाषा के अनुरूप तथा किसान विज्ञान के अनुरूप कार्य प्रणाली"** वाक्य को चरितार्थ करते हुए एक दूसरे के पूरक एंव पर्याय बने रहे। किसान अपने अनुभवों एंव ज्ञान द्वारा एक ऐसा नवीन विज्ञान एंव अनुसंधान को जन्म देता है जिस पर वैज्ञानिक- किसान की आवश्यकता के अनुरूप अनुसंधान को अपनाये साथ ही वह अनुसंधान किसान की भाषा के अनुकूल हो जिससे उसकी स्वीकार्यता एंव ग्राहिता किसानो के लिए सफलतापूर्वक हो।

वर्तमान दौर में प्रचलित जैविक खेती, कार्बनिक खेती तथा प्राकृतिक खेती का वर्णन ऋषि पराशर द्वारा वर्णित ग्रंथो में मिलता है श्री अन्न अर्थात मोटे अनाजो की खेती प्राचीन काल खंड से ही किसानो द्वारा की जाती रही परंतु उस दौर में कृषि सिर्फ जीवन निर्वाह का साधन ही बनी रही जबकि कालांतर में हरित क्रांति की सफलता ने कृषि के क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन किया जिसकी सफलता का ही प्रतिफल था कि खाद्यान उत्पादन में आत्मनिर्भरता के लक्ष्य को हासिल किया है।

डिजिटल कृषि के हस्तानतारण में भाषा की विविधिता एक गंभीर चुनौती

खेती के बदलते परिदृश्य के बीच जलवायु वर्तमान दौर की कृषि के लिए एक गंभीर चुनौती है। यह जलवायु परिवर्तन असमय वर्षा, सूखा, अल नीनो प्रभाव के रूप में खेती में दृष्टिगोचर हो रहा है जिससे वर्तमान दौर की कृषि प्रभावित हो रही है। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से बचने के लिए जलवायु आधारित कृषि तकनीकी का सफलतापूर्वक समावेश करके ही हम सफल कृषि की कल्पना कर सकते है। जलवायु आधारित प्रजातियों का विकास, मृदा स्वास्थ, मृदा एंव जल संरक्षण, कृषि का मशीनीकरण तथा कृषि के नवीन नवाचारो जैसे कृत्रिम बुद्धिमता, मशीन लर्निंग, डिजिटल कृषि, नैनो तकनीकी ई-मार्केटिंग, ड्रोन तकनीकी जैसे नवाचार का समावेश करके किसानो के खेत तक विधि प्रदर्शन तथा परिणाम परिदर्शन के तुलनात्मक अध्ययन माध्यम से **"करके सीखो एंव देखकर विश्वास करने के सिद्धांत"** को अपनाकर ही नवाचार का हस्तान्तरण किसान के खेत तक प्रभावी तरीके से करके उत्पादन, उपादकता तथा आय में वृद्धि की जा सकती है।

हिन्दी आधारित कृषि ज्ञान पद्धति के प्रचार एंव प्रसार में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् का योगदान

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की मूल प्रतिबद्धता अनुसंधान, शिक्षा एवं विस्तार के माध्यम से भारतीय कृषि को अधिक उत्पादक, टिकाऊ, लाभकारी और जलवायु सक्षम बनाना है। शिक्षा, शोध और प्रसार की यात्रा में भाषा केवल प्रशासनिक विषय नही बल्कि प्रोद्योगिकी के अंतिम छोर (किसान) तक पहुँचाने की रणनीतिक आवश्यकता है।

आज देश में कृषि अनुसंधान से प्राप्त ज्ञान को किसानो तक पहुँचाने में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् का विशाल प्रसार तंत्र प्रभावी तरीके से कार्य कर रहा है जिसमें कृषि विज्ञान केंद्र इस व्यवस्था के अग्रिम पंक्ति है। इनके माध्यम से किसानो, ग्रामीण युवाओं और कृषि से जुड़े हितधारको को प्रशिक्षण, प्रदर्शन, परामर्श और नयी तकनीकों की जानकारी हर जिलों में स्थापित कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से सरल एंव सहज भाषा में किसानो के अनुरूप प्रदान किया जाता है। वर्तमान परिवेश में भारतीय कृषि का स्वरुप डिजिटल इंडिया के द्वारा डिजिटल कृषि के रूप में दिन – प्रतिदिन विकसित हो रहा है। डिजिटल माध्यमो ने इस संपर्क को और अधिक प्रभावी और व्यापक बनाया है। किसान सारथी जैसे प्लेटफोर्म कृषि सम्बन्धी सलाह को किसानो तक उनकी आवश्यकता के अनुरूप पहुंचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। इसके अतिरिक्त किसान काल सेंटर, कृषि सूचना एंव प्रोद्योगिक केंद्र (ऍटिक) किसानों को क्षेत्रीय भाषाओ में भी जानकारी उपलब्ध करा रहे है जिससे बड़ी सुगमता से किसान नवीन एवं उन्नत तकनीकों से जुड़ कर लाभ प्राप्त कर रहे है ।

वैज्ञानिक सलाह , परामर्श तथा निदान जब किसान की भाषा से जुड़कर उसका सीधा संबंध कृषि उत्पादन , उत्पादकता और किसानो की आय से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ जाता है तभी यह ज्ञान किसान के लिए उपयोगी होता है। किसानो के लिए प्राय: जलवायु एंव क्षेत्र आधारित कृषि इनपुट जब सही समय पर सही मात्रा में उपलब्ध हो तथा यह स्थानीय परिस्थिति से जुड़ी हो ऐसी स्थिति में किसानो के अंदर उसके प्रति समझ विकसित होती है। शायद यही मुख्य वजह है कि अब भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद तथा कृषि विश्वविद्यालयों सहित प्रमुख कृषि संस्थानों में हिन्दी सहित विभिन्न भाषाओं में ज्ञान उपलब्ध कराने पर निरंतर बल दिया जा रहा है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् की मासिक हिंदी पत्रिका खेती, द्विमासिक पत्रिका फल – फूल, भारतीय सब्जी अनुसंधान संस्थान की हिंदी पत्रिका सब्जी किरण, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एंव प्रोद्योगिक विश्विद्यालय, कुमारगंज , अयोध्या से प्रकाशित हिंदी पत्रिका पूर्वांचल खेती, सहित हिंदी माध्यम में ई–हिन्दी मैगजीन **कृषक मंच** हिंदी भाषा में तकनीकी ज्ञान का हस्तान्तरण सरल एंव सहज भाषा में किसानो तक प्रभावी रूप से गतिशील है ।

किसान केन्द्रित कृषि शिक्षा एंव ग्रामीण कृषि कार्य अनुभव

हिंदी दिवस का एक महत्वपूर्ण आयाम कृषि शिक्षा और विद्यार्थियों से जुड़ा है | आज के कृषि विद्यार्थी एंव शोधार्थी ही कल के सफल कृषि वैज्ञानिक, शिक्षक नीति- निर्माता, और कृषि तकनीकी उद्यमों के नेतृत्वकर्ता साबित होंगे जब युवा अपनी भाषा में पढ़ने एंव सवाल पूछने का साहस करने में सक्षम एंव प्रभावी होगा तभी कृषि शिक्षा का समावेश पूर्ण तरीके से किसान एंव ग्रामीण आधारित हो सकेगा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा कृषि स्नातक शिक्षा चार वर्षीय पाठ्यक्रम में अंतिम वर्ष के विद्यार्थियों को ग्रामीण कृषि कार्य अनुभव एंव प्रायोगिक शिक्षा आधारित ज्ञान पद्धति अत्यन्त ही लाभप्रद एंव उपयोगी है कृषि एंव विद्यार्थियों भारत के ग्रामीण परिवेश में किसानो की मूल समस्याओं से सीधे रूबरू होकर उनकी समस्या को धरातल पर स्पष्ट रूप से स्वंय रूबरू होते है जिससे उनमें शैक्षणिक ज्ञान के अलावा किसानो की मूल प्रकृति के अनुरूप व्यवहारिक समझ विकसित होने के साथ–साथ प्रयोगशाला के अनुसंधान तथा उसके सफल क्रियान्वयन के साथ–साथ उसके सफल अथवा असफल परिणाम की धरातलीय रिपोर्ट भी तैयार की जाती है जिससे निकट भविष्य में उसमें प्रभावी सुधार के साथ–साथ उसके प्रभावी खोज एंव निदान को समाहित करके तकनीकी विकसित किया जा सकें।

निष्कर्ष

राजभाषा हिन्दी दिवस के दिन हमारा संकल्प यह होना चाहिए कि आने वाले वर्षो में भारत का कोई किसान केवल इस लिए किसी वैज्ञानिक नवाचार एंव अवसर से वंचित न रहे कि वह अनुसंधान उसकी भाषा एंव समझ में नहीं था और कोई विद्यार्थी केवल इस लिए शिक्षा एंव अनुसंधान से दूर न हो कि वैज्ञानिक ज्ञान उसके समझ एंव आम भाषा में नहीं बनाया गया और न हीं उपलब्ध था। जब किसान अपनी भाषा में अनुसंधान के प्रति समझ विकसित करेगा, युवा तथा वैज्ञानिक अपनी भाषा में नवाचार करेंगे , युवा अपनी भाषा में सवाल पूछने का प्रयास करेंगे तभी भारत की कृषि ज्ञान आधारित, आत्मनिर्भर और भविष्य की कृषि सक्षम बनेगी। यही हिन्दी दिवस की सार्थकता है तथा यही विज्ञान से खेत तक और ज्ञान युवा तक हिन्दी की प्रतिबद्धता रहेगी ।

■■■

जलवायु परिवर्तन का कृषि एवं मृदा उर्वरता पर प्रभाव

एम. के. तरवरिया, एच. एल. खपेडिया, सुधीर सिंह भदौरिया एवं जन्मेजय शर्मा
कृषि महाविद्यालय, ग्वालियर, राजमाता विजयाराजे सिंधिया कृषि विश्वविद्यालय, ग्वालियर (मध्यप्रदेश)

जलवायु परिवर्तन आज विश्व की कृषि व्यवस्था के समक्ष सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक बनकर उभरा है। बढ़ता तापमान, अनियमित एवं अनिश्चित वर्षा पैटर्न, बार-बार आने वाले सूखे एवं बाढ़ जैसी चरम मौसम घटनाएँ फसल उत्पादकता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रही हैं। इसके साथ-साथ जलवायु परिवर्तन का एक कम चर्चित, किंतु उतना ही गंभीर पहलू मृदा उर्वरता पर इसका दीर्घकालिक प्रभाव है। बढ़ते तापमान से मृदा के जैविक कार्बन का तीव्र अपघटन, अनियमित वर्षा से मृदा क्षरण एवं पोषक तत्वों का निक्षालन तथा बदलते सूक्ष्मजैविक संतुलन के कारण मृदा की उत्पादकता क्रमिक रूप से प्रभावित हो रही है।

प्रस्तुत लेख में जलवायु परिवर्तन के प्रमुख संकेतकों, कृषि उत्पादकता एवं फसल पैटर्न पर इसके प्रभाव, मृदा स्वास्थ्य एवं उर्वरता पर पड़ने वाले विशिष्ट प्रभावों तथा जलवायु-अनुकूल कृषि पद्धतियों एवं अनुकूलन रणनीतियों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। यह जानकारी किसानों एवं कृषि हितधारकों को जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों के प्रति जागरूक एवं अनुकूलन के लिए तैयार करने में सहायक हो सकती है।

प्रस्तावना

पृथ्वी का जलवायु तंत्र निरंतर परिवर्तनशील रहा है, किंतु पिछले कुछ दशकों में मानवीय गतिविधियों, विशेषकर जीवाश्म ईंधन के दहन, वनों की कटाई एवं औद्योगिक उत्सर्जन के कारण यह परिवर्तन असामान्य रूप से तीव्र हुआ है। बढ़ता वैश्विक तापमान, बदलता वर्षा चक्र, हिमनदों का पिघलना एवं समुद्र के जल स्तर में वृद्धि—ये सभी संकेत देते हैं कि जलवायु परिवर्तन अब भविष्य की आशंका नहीं, बल्कि वर्तमान की वास्तविकता बन चुका है।

कृषि क्षेत्र इस परिवर्तन के प्रति सर्वाधिक संवेदनशील क्षेत्रों में से एक है, क्योंकि फसल उत्पादन सीधे तापमान, वर्षा एवं मौसम की नियमितता पर निर्भर करता है। इसके साथ-साथ कृषि स्वयं भी जलवायु परिवर्तन में एक भागीदार है। गहन खेती, फसल अवशेष जलाना एवं असंतुलित उर्वरक प्रयोग जैसी प्रथाएँ ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में योगदान करती हैं। इस प्रकार कृषि एवं जलवायु परिवर्तन के बीच एक जटिल एवं दोतरफा संबंध है, जिसे समझना वर्तमान समय की महत्वपूर्ण वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक आवश्यकता है।

इस दोतरफा संबंध का एक महत्वपूर्ण, किंतु प्रायः अनदेखा पक्ष मृदा है। मृदा न केवल जलवायु परिवर्तन से प्रभावित होने वाला एक निष्क्रिय माध्यम है, बल्कि यह जलवायु तंत्र का एक सक्रिय भाग भी है। यह स्थलीय कार्बन का एक महत्वपूर्ण भंडार है और इसके स्वास्थ्य में होने वाला परिवर्तन कार्बन चक्र एवं जलवायु प्रक्रियाओं को प्रभावित कर सकता है। इसलिए जलवायु परिवर्तन एवं मृदा उर्वरता को अलग-अलग समस्याओं के रूप में नहीं, बल्कि एक ही व्यापक चुनौती के दो परस्पर जुड़े पहलुओं के रूप में समझना आवश्यक है।

जलवायु परिवर्तन के प्रमुख संकेतक

कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को समझने से पूर्व इसके प्रमुख संकेतकों को जानना आवश्यक है:

- **वैश्विक औसत तापमान में निरंतर वृद्धि**, जिसके कारण गर्मी की लहरें अधिक बार एवं अधिक तीव्र हो रही हैं।
- **वर्षा के पैटर्न में अनियमितता**, जिसके कारण कहीं अत्यधिक वर्षा एवं बाढ़, तो कहीं दीर्घकालिक सूखे की स्थिति उत्पन्न हो रही है।
- **मानसून के आगमन एवं वापसी के समय में अनिश्चितता**, जो फसल की बुवाई एवं कटाई की योजना को प्रभावित करती है।
- **चरम मौसम घटनाओं**, जैसे चक्रवात, ओलावृष्टि एवं शीतलहर, की आवृत्ति एवं तीव्रता में वृद्धि।
- **वायुमंडलीय कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) की सांद्रता में वृद्धि**, जो पौधों की वृद्धि एवं शरीरक्रियात्मक प्रक्रियाओं को प्रभावित कर सकती है।

ये सभी संकेतक मिलकर कृषि व्यवस्था के लिए एक अत्यंत अनिश्चित एवं चुनौतीपूर्ण वातावरण का निर्माण कर रहे हैं, जिसमें पारंपरिक कृषि पद्धतियों एवं फसल कैलेंडर में आवश्यकतानुसार बदलाव करना increasingly आवश्यक हो गया है।

कृषि उत्पादकता पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन का कृषि उत्पादकता पर प्रभाव अनेक माध्यमों से पड़ता है। बढ़ते तापमान से फसलों में ऊष्मा-तनाव (Heat Stress) उत्पन्न होता है, जो विशेषकर फूल आने एवं दाना भरने की संवेदनशील अवस्थाओं में उपज को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकता है। गेहूँ जैसी शीत ऋतु की फसलों में बढ़ता तापमान दाना भरने की अवधि को कम कर सकता है, जिससे दानों के आकार एवं वजन में कमी हो सकती है।

अनियमित एवं अनिश्चित वर्षा पैटर्न फसल की बुवाई, वृद्धि एवं कटाई की समयबद्धता को प्रभावित करता है। बुवाई के समय पर्याप्त वर्षा न होने से बीज अंकुरण प्रभावित हो सकता है, जबकि कटाई के समय अप्रत्याशित वर्षा से तैयार फसल को नुकसान पहुँच सकता है। बार-बार आने वाले सूखे से जल संकट गहराता है, जबकि अचानक आने वाली बाढ़ खड़ी फसल को गंभीर रूप से क्षति पहुँचा सकती है।

इसके अतिरिक्त, बदलते तापमान एवं आर्द्रता के कारण कीट एवं रोगों के प्रकोप में भी परिवर्तन हो सकता है। कुछ परिस्थितियों में कीट एवं रोग नए क्षेत्रों में फैल सकते हैं तथा उनकी तीव्रता बढ़ सकती है, जिससे फसल सुरक्षा की चुनौतियाँ और अधिक जटिल हो जाती हैं।

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव केवल फसल की मात्रा तक सीमित नहीं है, बल्कि फसल की गुणवत्ता भी इससे प्रभावित हो सकती है। उच्च तापमान के कारण अनाज में प्रोटीन एवं स्टार्च की मात्रा में परिवर्तन, फलों के आकार एवं मिठास में बदलाव तथा दलहनी फसलों में दाना भरने की प्रक्रिया में असमानता हो सकती है। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन का प्रभाव उपज, गुणवत्ता, बाज़ार मूल्य एवं पोषण मूल्य तक विस्तारित हो सकता है, जिससे किसानों की आय एवं उपभोक्ताओं के पोषण पर भी प्रभाव पड़ता है।

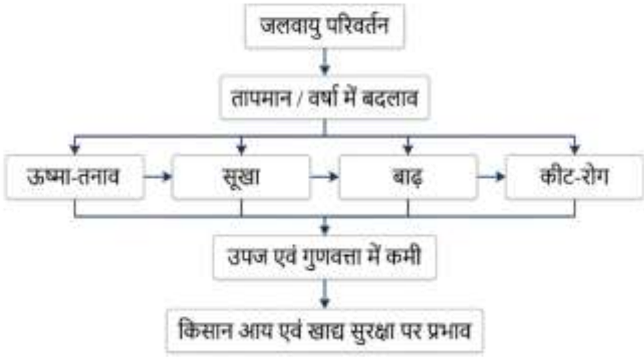

चित्र 1: जलवायु परिवर्तन का फसल उत्पादकता एवं गुणवत्ता पर प्रभाव

मृदा उर्वरता पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन का मृदा स्वास्थ्य एवं उर्वरता पर प्रभाव प्रायः कम चर्चित रहता है, किंतु यह उतना ही गंभीर एवं दूरगामी है। इसके प्रमुख प्रभावों को निम्न तालिका में संक्षेप में दर्शाया गया है:

जलवायु कारक	मृदा पर प्रभाव	प्रमुख परिणाम
बढ़ता तापमान	जैविक कार्बन का तीव्र अपघटन	जैविक उर्वरता में कमी
अनियमित एवं तीव्र वर्षा	ऊपरी उपजाऊ मृदा का कटाव एवं बहाव	मृदा गहराई एवं उर्वरता में ह्रास
सूखा एवं जल तनाव	सूक्ष्मजैविक गतिविधि में कमी	पोषक चक्रण धीमा होना
अत्यधिक वर्षा/बाढ़	पोषक तत्वों का निक्षालन एवं जलभराव	नाइट्रोजन हानि एवं मृदा वातन में कमी
बढ़ती CO_2 सांद्रता	पौधों की जड़ संरचना एवं पोषक अवशोषण में बदलाव	पोषक तत्व अवशोषण क्षमता में परिवर्तन

इन प्रभावों में सबसे अधिक चिंताजनक मृदा जैविक कार्बन की हानि है। तापमान बढ़ने से मृदा में सूक्ष्मजीवों की श्वसन दर बढ़ सकती है, जिससे जैविक पदार्थ का अपघटन तेज होता है और मृदा में संचित कार्बन का एक भाग कार्बन डाइऑक्साइड के रूप में वायुमंडल में मुक्त हो सकता है। इससे एक दुष्चक्र उत्पन्न हो सकता है—बढ़ता तापमान मृदा कार्बन को कम करता है, जबकि घटता मृदा कार्बन मृदा की जल धारण क्षमता एवं उर्वरता को प्रभावित कर फसल को जलवायु परिवर्तन के प्रति अधिक संवेदनशील बना सकता है।

इसके अतिरिक्त, बदलते तापमान एवं आर्द्रता का मृदा के सूक्ष्मजैविक समुदाय की संरचना पर भी प्रभाव पड़ सकता है। कुछ लाभकारी सूक्ष्मजीव, जो पोषक चक्रण एवं नाइट्रोजन स्थिरीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, अत्यधिक तापमान अथवा नमी में बदलाव के प्रति संवेदनशील हो सकते हैं। इससे मृदा की प्राकृतिक पोषक आपूर्ति क्षमता प्रभावित हो सकती है और किसानों की बाह्य उर्वरकों पर निर्भरता बढ़ सकती है। इससे उत्पादन लागत बढ़ने के साथ-साथ दीर्घकाल में मृदा स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

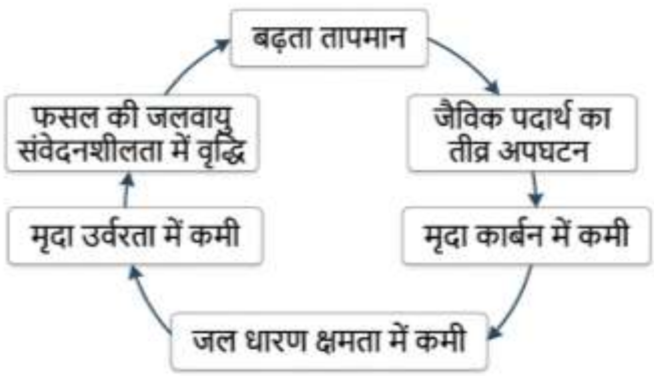

चित्र 2: जलवायु परिवर्तन एवं मृदा कार्बन ह्रास का दुष्चक्र

फसल एवं क्षेत्र-विशेष प्रभाव

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव सभी फसलों एवं क्षेत्रों पर समान नहीं होता। तटीय क्षेत्रों में समुद्र के जल स्तर में वृद्धि से मृदा की लवणीयता बढ़ सकती है, जो फसल उत्पादन के लिए एक नई चुनौती है। पहाड़ी एवं वर्षा-सिंचित क्षेत्रों में अनियमित वर्षा से खरीफ फसलों की बुवाई का समय प्रभावित हो सकता है। उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में बढ़ता तापमान गेहूँ जैसी शीत ऋतु की फसलों की उत्पादकता को प्रभावित कर सकता है, जबकि दक्षिण भारत के कुछ क्षेत्रों में सूखे की बढ़ती आवृत्ति दलहन एवं तिलहन फसलों के उत्पादन को प्रभावित कर सकती है।

इसके अतिरिक्त, जलवायु परिवर्तन फसल कैलेंडर एवं फसल विविधता को भी प्रभावित कर रहा है। पारंपरिक रूप से उगाई जाने वाली कुछ किस्में बदलती मौसम परिस्थितियों के अनुकूल नहीं रह पाती हैं, जिससे किसानों को अधिक सहनशील किस्मों की ओर रुख करना पड़ सकता है। यह परिवर्तन कृषि ज्ञान, बीज व्यवस्था एवं बाजार संरचना—सभी पर व्यापक प्रभाव डाल सकता है।

पशुपालन क्षेत्र भी जलवायु परिवर्तन से अछूता नहीं है। बढ़ता तापमान पशुओं में ऊष्मा-तनाव उत्पन्न कर सकता है, जिससे दुग्ध उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता प्रभावित हो सकती है। चारा फसलों की उपलब्धता एवं गुणवत्ता में कमी से पशुपालक किसानों की आजीविका पर भी दबाव बढ़ सकता है। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन का प्रभाव केवल फसल उत्पादन तक सीमित न रहकर सम्पूर्ण कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं तक विस्तारित हो चुका है।

जलवायु-अनुकूल कृषि: अनुकूलन रणनीतियाँ

जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने के लिए वैज्ञानिकों, कृषि विशेषज्ञों एवं किसानों द्वारा विभिन्न जलवायु-अनुकूल कृषि (Climate-Smart Agriculture) रणनीतियाँ विकसित एवं अपनाई जा रही हैं। इन रणनीतियों का उद्देश्य केवल वर्तमान परिस्थितियों में फसल उत्पादन बनाए रखना नहीं है, बल्कि कृषि प्रणाली को भविष्य में होने वाले तापमान, वर्षा एवं चरम मौसम में संभावित बदलावों के प्रति अधिक सक्षम एवं सहनशील बनाना भी है। प्रमुख अनुकूलन रणनीतियों को निम्न तालिका में संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है:

रणनीति	मुख्य उपाय एवं लाभ
जलवायु-सहनशील किस्में	सूखा, गर्मी एवं जलभराव सहनशील किस्मों का विकास एवं प्रयोग
संरक्षण कृषि	न्यूनतम जुताई एवं फसल अवशेष प्रबंधन द्वारा मृदा कार्बन एवं नमी संरक्षण
जल प्रबंधन	ड्रिप/स्प्रिंकलर सिंचाई एवं वर्षा जल संचयन द्वारा जल उपयोग दक्षता में वृद्धि
फसल विविधीकरण	एकल फसल के स्थान पर विविध एवं मिश्रित फसल प्रणालियों को अपनाना
मौसम आधारित सलाह	मोबाइल एवं डिजिटल माध्यमों से समय पर मौसम पूर्वानुमान एवं कृषि सलाह
कृषि-वानिकी	वृक्षारोपण द्वारा सूक्ष्म जलवायु में सुधार एवं मृदा संरक्षण

ISSN: 3049-2211

मृदा प्रबंधन के माध्यम से जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण

यह ध्यान देने योग्य है कि मृदा न केवल जलवायु परिवर्तन से प्रभावित होती है, बल्कि उचित एवं वैज्ञानिक प्रबंधन के माध्यम से जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। मृदा में पर्याप्त मात्रा में जैविक कार्बन का संरक्षण मृदा की भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणवत्ता को बनाए रखने के साथ-साथ कार्बन को अपेक्षाकृत स्थिर रूप में संचित करने में सहायक होता है।

मृदा में जैविक कार्बन बढ़ाने वाली पद्धतियाँ—जैसे बायोचार का प्रयोग, फसल अवशेष प्रबंधन, हरी खाद एवं संरक्षण कृषि—मृदा में कार्बन के संचयन को बढ़ाने में सहायक हो सकती हैं। फसल अवशेषों को जलाने के बजाय उन्हें खेत में मिलाने अथवा उचित रूप से प्रबंधित करने से जैविक पदार्थ की मात्रा बनाए रखने में सहायता मिलती है। इसी प्रकार हरी खाद मृदा में जैविक पदार्थ जोड़ने के साथ मृदा की उर्वरता सुधारने में योगदान करती है।

बायोचार का प्रयोग भी मृदा में कार्बन को अपेक्षाकृत स्थिर रूप में बनाए रखने का एक संभावित उपाय है। इसके अतिरिक्त, संरक्षण कृषि के अंतर्गत न्यूनतम जुताई एवं फसल अवशेष प्रबंधन से मृदा में कार्बन ह्रास को कम करने तथा मृदा की संरचना एवं नमी संरक्षण को बनाए रखने में सहायता मिल सकती है। इस प्रकार बेहतर मृदा प्रबंधन एक साथ मृदा स्वास्थ्य सुधार, फसल की जलवायु सहनशीलता एवं कार्बन संरक्षण में योगदान कर सकता है।

इसी प्रकार संतुलित उर्वरण अपनाकर नाइट्रस ऑक्साइड जैसी शक्तिशाली ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन को नियंत्रित करने में सहायता मिल सकती है। नाइट्रोजन उर्वरकों का आवश्यकता से अधिक अथवा असंतुलित प्रयोग नाइट्रोजन के नुकसान एवं नाइट्रस ऑक्साइड उत्सर्जन को बढ़ा सकता है। इसलिए फसल की वास्तविक आवश्यकता, मृदा की पोषक स्थिति एवं उचित मात्रा के आधार पर उर्वरकों का प्रयोग करना अधिक प्रभावी एवं पर्यावरण-अनुकूल दृष्टिकोण है।

इस प्रकार किसान केवल जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को सहन करने वाले उपायों को अपनाने तक सीमित नहीं हैं, बल्कि उचित मृदा एवं पोषक तत्व प्रबंधन के माध्यम से जलवायु परिवर्तन के न्यूनीकरण में भी सक्रिय भूमिका निभा सकते हैं। जलवायु-अनुकूल कृषि में अनुकूलन एवं न्यूनीकरण दोनों दृष्टिकोणों का संतुलित समावेश आवश्यक है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य

भारत जैसे विशाल एवं विविध कृषि-जलवायु वाले देश में जलवायु परिवर्तन के प्रभाव क्षेत्र-दर-क्षेत्र अलग-अलग दिखाई देते हैं। वर्षा की मात्रा एवं वितरण, तापमान, मृदा प्रकार, सिंचाई सुविधाओं एवं प्रमुख फसलों में विविधता के कारण विभिन्न क्षेत्रों में जलवायु जोखिम की प्रकृति भी अलग होती है। समग्र रूप से जलवायु परिवर्तन देश की खाद्य सुरक्षा, किसानों की आय एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था के लिए एक गंभीर चुनौती प्रस्तुत करता है।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) एवं राज्य कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा जलवायु-सहनशील किस्मों के विकास, मौसम आधारित कृषि सलाह प्रणालियों तथा जलवायु-अनुकूल कृषि पद्धतियों पर निरंतर अनुसंधान किया जा रहा है। इन प्रयासों का उद्देश्य ऐसी तकनीकों एवं कृषि पद्धतियों का विकास करना है, जिनके माध्यम से किसान बदलती जलवायु परिस्थितियों में भी उत्पादन एवं संसाधन उपयोग की दक्षता को बनाए रख सकें।

राष्ट्रीय स्तर पर जलवायु-अनुकूल कृषि से संबंधित विभिन्न मिशन एवं कार्यक्रम संचालित किए जा रहे हैं, जिनके अंतर्गत किसानों को प्रशिक्षण, प्रदर्शन प्रक्षेत्र एवं तकनीकी सहायता प्रदान की जा रही है। इन प्रयासों के माध्यम से संरक्षण कृषि, जल प्रबंधन, फसल विविधीकरण, जलवायु-सहनशील किस्मों एवं मौसम आधारित कृषि सलाह जैसी तकनीकों को किसानों तक पहुँचाने पर जोर दिया जा रहा है। हालाँकि, जलवायु परिवर्तन की व्यापकता को देखते हुए केवल तकनीकी विकास पर्याप्त नहीं है। इसके प्रभावी समाधान के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान, नीतिगत सहयोग, संस्थागत समर्थन एवं किसानों की जागरूकता—इन सभी का समन्वय आवश्यक है। स्थानीय स्तर पर किसानों की जलवायु एवं संसाधन परिस्थितियों के अनुसार उपयुक्त तकनीकों का चयन और उनका व्यावहारिक प्रशिक्षण भी महत्वपूर्ण है।

यदि वैज्ञानिक संस्थान, शासन, कृषि विस्तार तंत्र एवं कृषक समुदाय मिलकर कार्य करें, तो भारतीय कृषि बदलती जलवायु परिस्थितियों के प्रति अधिक सक्षम एवं लचीली बन सकती है। इससे कृषि उत्पादकता के साथ-साथ मृदा स्वास्थ्य एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण को भी सुनिश्चित करने में सहायता मिलेगी।

निष्कर्ष

जलवायु परिवर्तन आज कृषि एवं मृदा स्वास्थ्य के समक्ष ऐसी चुनौती है, जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। बढ़ता तापमान, अनियमित वर्षा एवं चरम मौसम घटनाओं में वृद्धि न केवल फसल उत्पादकता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रही है, बल्कि मृदा की जैविक उर्वरता, संरचना, जल धारण क्षमता एवं पोषक चक्रण जैसी महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं को भी प्रभावित कर रही है। इस प्रकार जलवायु परिवर्तन की चुनौती केवल फसल उत्पादन तक सीमित नहीं है, बल्कि

यह मृदा स्वास्थ्य एवं कृषि की दीर्घकालिक स्थिरता से भी सीधे जुड़ी हुई है।

सकारात्मक पक्ष यह है कि संरक्षण कृषि, जलवायु-सहनशील किस्में, संतुलित उर्वरण, जल प्रबंधन, फसल विविधीकरण एवं बायोचार जैसी पद्धतियाँ कृषि को बदलती जलवायु परिस्थितियों के प्रति अधिक सहनशील बनाने में सहायक हो सकती हैं। साथ ही, फसल अवशेष प्रबंधन, हरी खाद एवं उचित मृदा प्रबंधन जैसी पद्धतियाँ मृदा कार्बन के संरक्षण एवं मृदा स्वास्थ्य सुधार में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं।

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने के लिए अनुकूलन एवं न्यूनीकरण दोनों को कृषि प्रबंधन का अभिन्न हिस्सा बनाना आवश्यक है। यदि अनुसंधान संस्थान, शासन एवं कृषक समुदाय मिलकर वैज्ञानिक एवं स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप रणनीतियों को व्यापक स्तर पर अपनाएँ, तो भारतीय कृषि जलवायु परिवर्तन की चुनौती का सामना करते हुए अपनी उत्पादकता, मृदा स्वास्थ्य एवं संसाधन उपयोग दक्षता को बनाए रख सकती है।

अंततः, जलवायु परिवर्तन के दौर में कृषि की सफलता केवल अधिक उत्पादन प्राप्त करने में नहीं, बल्कि उत्पादकता, मृदा स्वास्थ्य एवं पर्यावरणीय स्थिरता के बीच संतुलन स्थापित करने में निहित है। वास्तव में, जलवायु-अनुकूल एवं मृदा-हितैषी कृषि ही आने वाले समय की खाद्य सुरक्षा की वास्तविक कुंजी है।

■■■

अगस्त में सब्जियों की नर्सरी प्रबंधन एवं रबी फसलों की पूर्व तैयारी

(सफल रबी सब्जी उत्पादन की नींव: नर्सरी से खेत तक)

नीरज, विनोद कुमार एवं कृष्णा

सब्जी विज्ञान विभाग, महाराणा प्रताप बागवानी विश्वविद्यालय, करनाल, हरियाणा, भारत

अगस्त माह भारतीय सब्जी उत्पादन के वार्षिक चक्र में एक निर्णायक मोड़ है। इसी समय टमाटर, बंदगोभी, फूलगोभी, ब्रोकली, प्याज एवं शिमला मिर्च जैसी रबी फसलों की नर्सरी तैयार की जाती है। जो किसान इस माह नर्सरी प्रबंधन की बारीकियों पर ध्यान नहीं देते, उन्हें कमजोर पौध, अधिक मृत्यु दर एवं खेत में असमान स्थापन जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है, जिसका सीधा असर अक्टूबर-नवंबर की रोपाई के बाद उपज पर पड़ता है। इस अंक में नर्सरी प्रबंधन, बीजोपचार, कीट-रोग नियंत्रण एवं खेत की वैज्ञानिक पूर्व-तैयारी पर संक्षेप में चर्चा की गई है।

भाग एक: अगस्त में सब्जी नर्सरी प्रबंधन

नर्सरी स्थल एवं संरचना

- नर्सरी स्थल ऊँचा एवं जल-निकासी युक्त हो, ताकि जड़ सड़न (डैंपिंग ऑफ) न हो।
- क्यारियाँ भूमि से 15-20 सेमी ऊँची (रेज्ड बेड), चौड़ाई 1-1.2 मीटर रखें।
- भारी वर्षा से बचाव हेतु नेट-हाउस अथवा 50% छाया जाल अत्यंत लाभदायक रहता है।
- प्रो-ट्रे एवं कोकोपीट माध्यम से जड़ें स्वस्थ रहती हैं व रोपाई क्षति न्यूनतम होती है।

फसल	बुवाई का समय	बीज दर/हे.	नर्सरी अवधि
टमाटर	अगस्त प्रथम-द्वितीय सप्ताह	400-500 ग्राम	25-30 दिन
बंदगोभी	अगस्त प्रथम सप्ताह	400-500 ग्राम	25-30 दिन
फूलगोभी (अगेती)	जुलाई अंत-अगस्त प्रथम	500-600 ग्राम	25-30 दिन
शिमला मिर्च	अगस्त प्रथम सप्ताह	400-500 ग्राम	35-40 दिन
प्याज (रबी)	अगस्त द्वितीय-तृतीय सप्ताह	8-10 किग्रा	40-45 दिन

बीजोपचार एवं पोषण

अगस्त की उमस भरी जलवायु में डैंपिंग ऑफ, जड़ सड़न व अंगमारी नर्सरी में सबसे अधिक हानि पहुँचाती हैं। बीज को थीरम/कार्बेन्डाजिम (2-3 ग्राम/किग्रा) अथवा ट्राइकोडर्मा विरिडी (4-5 ग्राम/किग्रा) से उपचारित करें। बुवाई के 10-12 दिन बाद 19:19:19 उर्वरक का 0.5% घोल पर्णीय छिड़काव लाभकारी रहता है। सिंचाई हल्की एवं फव्वारा विधि से करें तथा क्यारियों में जलभराव न होने दें।

ISSN: 3049-2211

प्रमुख कीट-रोग एवं हार्डनिंग

सफेद मक्खी व थ्रिप्स से बचाव हेतु पीले/नीले स्टिकी ट्रैप व नीम तेल (3%) का प्रयोग करें। कटवर्म नियंत्रण हेतु क्लोरपायरीफॉस मृदा उपचार करें। रोपाई से 5-7 दिन पूर्व सिंचाई घटाकर व छाया जाल हटाकर पौध को धूप की अभ्यस्त कराना (हार्डनिंग) आवश्यक है, जिससे खेत में मृत्यु दर काफी कम हो जाती है।

भाग दो: रबी सब्जी हेतु खेत की पूर्व तैयारी

रोपाई से पूर्व मृदा परीक्षण करवाना अत्यंत आवश्यक है, जिससे pH, कार्बनिक कार्बन एवं उपलब्ध पोषक तत्वों की स्थिति के आधार पर उर्वरक मात्रा वैज्ञानिक ढंग से तय की जा सके। अधिकांश सब्जियों के लिए आदर्श pH 6.0-7.0 होता है। खरीफ कटाई के तुरंत बाद गहरी जुताई करें, जिससे कीट-प्यूपा व खरपतवार बीज नष्ट हों, फिर 2-3 बार हैरो/कल्टीवेटर चलाकर मिट्टी भुरभुरी बनाएँ। अंतिम जुताई के समय 20-25 टन/हे. गोबर खाद अथवा 5-7 टन/हे. वर्मीकम्पोस्ट मिलाएँ। एजोटोबैक्टर एवं पीएसबी कल्चर (2.5-3 किग्रा/हे.) का प्रयोग नाइट्रोजन-फास्फोरस उपलब्धता सुधारता है।

फसल	N (किग्रा/हे.)	P (किग्रा/हे.)	K (किग्रा/हे.)
टमाटर	120-150	60-80	60-80
बंदगोभी	150-180	80-100	80-100
फूलगोभी	120-150	60-80	60-80
प्याज	100-120	50-60	50-60

*मात्राएँ सामान्य अनुशंसा हैं; अंतिम मात्रा मृदा परीक्षण रिपोर्ट अनुसार तय करें।

व्यावहारिक सुझाव एवं सामान्य भूलें

- अत्यधिक घनी बुवाई से पौध कमजोर व 'लेगी' हो जाती है अनुशंसित बीज दर अपनाएँ।
- बीजोपचार न करने से डैंपिंग ऑफ की हानि 60-70% तक बढ़ सकती है।
- रोपाई-पूर्व हार्डनिंग अवश्य करें, अन्यथा खेत में पौध स्थापन प्रतिशत घटता है।
- मृदा परीक्षण के बिना अंदाज़े से उर्वरक डालने से लागत बढ़ती है पर उपज नहीं सुधरती।
- फसल-चक्र अपनाएँ - एक ही खेत में लगातार सोलेनेसी कुल की फसल न लें, मृदाजनित रोग व सूत्रकृमि नियंत्रित रहेंगे।

नर्सरी में पोषण एवं सिंचाई प्रबंधन

स्वस्थ एवं सुदृढ़ पौध तैयार करने के लिए संतुलित पोषण आवश्यक है। बुवाई से पूर्व क्यारी में अच्छी तरह सड़ी गोबर की खाद अथवा वर्मीकम्पोस्ट 4-5 किलोग्राम प्रति वर्ग मीटर की दर से मिलाएँ। रोपाई से एक सप्ताह पूर्व नाइट्रोजन की मात्रा कम कर पोटाश युक्त छिड़काव करने से पौध की जड़ों का विकास सुदृढ़ होता है और वे रोपाई के तनाव को बेहतर सहन कर पाती हैं। सिंचाई हल्की एवं नियमित होनी चाहिए - फव्वारा अथवा स्प्रिंकलर विधि सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि इससे बीज बहते नहीं और मृदा में एकसमान नमी बनी रहती है।

संरक्षित खेती एवं उन्नत तकनीकें

नेट-हाउस/पॉली-हाउस में नर्सरी

अगस्त की अनियमित वर्षा, उच्च आर्द्रता एवं तापमान में उतार-चढ़ाव को देखते हुए संरक्षित संरचनाओं में नर्सरी तैयार करना बुद्धिमानीपूर्ण विकल्प है। 50% छाया जाल वाला नेट-हाउस वर्षा की सीधी मार से बीज की रक्षा करता है, साथ ही सफेद मक्खी व थ्रिप्स जैसे विषाणु वाहक कीटों का प्रवेश भी रोकता है, जिससे टमाटर-मिर्च में पर्ण मरोड़ (लीफ कर्ल) विषाणु रोग का जोखिम घटता है।

ग्राफ्टेड पौध एवं मल्चिंग-टपक सिंचाई

मृदाजनित रोगों (उकठा, जड़ गाँठ सूत्रकृमि) की गंभीर समस्या वाले क्षेत्रों में ग्राफ्टेड पौध का उपयोग प्रभावी समाधान है, जिससे उपज में 15-25% तक वृद्धि दर्ज की गई है। रबी सब्जियों की रोपाई के साथ प्लास्टिक मल्च बिछाने से खरपतवार नियंत्रण एवं मृदा नमी संरक्षण होता है। मल्च के साथ टपक सिंचाई जोड़ने पर फर्टिगेशन संभव होता है, जिससे परंपरागत विधि की तुलना में 25-30% उर्वरक की बचत भी होती है।

आर्थिक पहलू एवं विपणन की तैयारी

अनेक किसान समय एवं श्रम की बचत हेतु प्रमाणित नर्सरी से तैयार पौध खरीदना पसंद करते हैं, जबकि बड़े क्षेत्रफल में रोपाई करने वाले किसानों के लिए स्वयं की नर्सरी आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभदायक रहती है। नवंबर-दिसंबर में बाज़ार में आने वाली अगेती फूलगोभी एवं टमाटर सामान्यतः उच्च मूल्य प्राप्त करते हैं, क्योंकि इस अवधि में आपूर्ति सीमित रहती है। अतः अगस्त में समय पर नर्सरी तैयार कर अक्टूबर में शीघ्र रोपाई करने वाले किसानों को बाज़ार में मूल्य लाभ मिलने की संभावना अधिक रहती है। बीज खरीद का बिल एवं छिड़काव-उर्वरक प्रयोग की तिथि सहित डायरी बनाए रखना निर्यात-गुणवत्ता उत्पादन एवं जैविक प्रमाणन दोनों के लिए उपयोगी है।

प्रमुख कीट-रोग एवं एकीकृत प्रबंधन (IPM)

- **डैंपिंग ऑफ:** बीजपत्र अवस्था में तना गलकर पौधा गिरना - ट्राइकोडर्मा उपचार व जल-निकासी सुधार करें।

- **सफेद मक्खी/थ्रिप्स:** पत्तियाँ मुड़ना, विषाणु वाहक - पीला/नीला स्टिकी ट्रैप एवं नेट-हाउस संरक्षण अपनाएँ।
- **तना/जड़ सड़न (राइजोक्टोनिया):** जड़ क्षेत्र में भूरापन - मृदा सौर्यीकरण एवं संतुलित सिंचाई करें।
- **कटवर्म (कटुआ इल्ली):** रात्रि में तना काटना - क्लोरपायरीफॉस मृदा उपचार व प्रकाश प्रपंच लगाएँ।

मासिक कार्य-सूची (चेकलिस्ट) - अगस्त माह

- **प्रथम सप्ताह:** नर्सरी स्थल तैयारी, क्यारी निर्माण, बीजोपचार, टमाटर/बंदगोभी/मिर्च की बुवाई।
- **द्वितीय सप्ताह:** फूलगोभी, शिमला मिर्च, प्याज की बुवाई; पहली सिंचाई एवं निगरानी।
- **तृतीय सप्ताह:** खरीफ कटाई उपरांत खेत की गहरी जुताई प्रारंभ; मृदा परीक्षण हेतु नमूना संग्रह।
- **चतुर्थ सप्ताह:** जीवांश खाद मिलाना, जैव उर्वरक प्रयोग, नर्सरी में पर्णीय पोषण एवं कीट-रोग निगरानी।

■■■

दलहनी फसलों में जैव उर्वरकों की भूमिका और महत्व

ओमी नायक, गोविंद त्यागी, जया बिंदल, नेहा कुमारी
पीएच.डी. शोधार्थी, सस्य विज्ञान, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, मेरठ

दलहनी फसलें भारतीय कृषि एवं आहार व्यवस्था का एक अनिवार्य अंग हैं, जो प्रोटीन की आपूर्ति के साथ-साथ मृदा की उर्वरता बनाए रखने एवं बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इन फसलों की सबसे विशिष्ट जैविक क्षमता वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करने की है, जो मुख्यतः राइज़ोबियम जीवाणुओं के साथ उनके सहजीवी (Symbiotic) संबंध के माध्यम से संभव होती है। जैव उर्वरक जीवित सूक्ष्मजीवों से निर्मित उत्पाद इसी प्राकृतिक प्रक्रिया को सुदृढ़ करने का एक किफायती, पर्यावरण-अनुकूल एवं वैज्ञानिक साधन हैं। राइज़ोबियम के अतिरिक्त फॉस्फोरस घुलनशील जीवाणु (PSB), वृद्धि प्रवर्तक जीवाणु (PGPR) एवं माइकोराइज़ा कवक जैसे जैव उर्वरक भी दलहनी फसलों की उत्पादकता एवं मृदा स्वास्थ्य में उल्लेखनीय योगदान देते हैं। प्रस्तुत लेख में दलहनी फसलों की विशिष्टता, विभिन्न जैव उर्वरकों की भूमिका, इनके प्रयोग की विधियाँ, दलहन उत्पादन एवं मृदा स्वास्थ्य पर पड़ने वाले लाभ तथा भारतीय कृषि में इनकी संभावनाओं एवं चुनौतियों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

प्रस्तावना

दलहनी फसलें—जैसे अरहर, चना, मूँग, उड़द, मसूर एवं मटर—भारतीय कृषि एवं आहार व्यवस्था का एक अत्यंत महत्वपूर्ण अंग हैं। ये न केवल देश की बड़ी जनसंख्या के लिए प्रोटीन का प्रमुख स्रोत हैं, बल्कि इनकी एक विशिष्ट जैविक क्षमता—वायुमंडलीय नाइट्रोजन को स्थिर करने की क्षमता—इन्हें कृषि पारिस्थितिकी तंत्र के लिए भी अत्यंत मूल्यवान बनाती है। जहाँ अन्य फसलों को नाइट्रोजन की आवश्यकता के लिए मुख्यतः मृदा एवं उर्वरकों पर निर्भर रहना पड़ता है, वहीं दलहनी फसलें वायुमंडल में प्रचुर मात्रा में उपस्थित नाइट्रोजन गैस (N_2) को जैविक प्रक्रिया के माध्यम से उपयोगी रूप में परिवर्तित करने में सक्षम होती हैं।

यह अद्भुत क्षमता किसी रासायनिक प्रक्रिया के बजाय एक प्राकृतिक जैविक सहजीविता के माध्यम से संभव होती है। दलहनी पौधों की जड़ों में बनने वाली गाँठों में निवास करने वाले राइज़ोबियम जीवाणु नाइट्रोजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसके बदले पौधा इन जीवाणुओं को कार्बोहाइड्रेट एवं ऊर्जा उपलब्ध कराता है। जैव उर्वरक इसी प्राकृतिक प्रक्रिया को वैज्ञानिक रूप से सुदृढ़ करने का एक प्रभावी साधन हैं, जो न केवल दलहन की उत्पादकता बढ़ाने में सहायक होते हैं, बल्कि रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता कम करके टिकाऊ एवं किफायती कृषि को भी बढ़ावा देते हैं।

दुर्भाग्यवश, अनेक किसान इस प्राकृतिक क्षमता के महत्व से अभी भी पर्याप्त रूप से परिचित नहीं हैं और दलहनी फसलों में भी अन्य फसलों की तरह रासायनिक नाइट्रोजन उर्वरकों का प्रयोग करते हैं। यह न केवल अनावश्यक व्यय का कारण बन सकता है, बल्कि मृदा में उपस्थित राइज़ोबियम जीवाणुओं की सक्रियता को भी प्रभावित कर सकता है। जब मृदा में नाइट्रोजन की उपलब्धता पहले से पर्याप्त होती है, तो पौधे द्वारा राइज़ोबियम के साथ प्रभावी सहजीविता स्थापित करने की आवश्यकता

कम हो सकती है, जिससे प्राकृतिक नाइट्रोजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया प्रभावित होती है। इसलिए दलहनी फसलों में उर्वरक प्रबंधन के लिए एक भिन्न एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है, जिसमें जैव उर्वरकों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाए।

दलहनी फसलों की विशेषता: नाइट्रोजन स्थिरीकरण

नाइट्रोजन पौधों के लिए एक अनिवार्य पोषक तत्व है, किंतु वायुमंडल में उपस्थित नाइट्रोजन गैस (N_2) को अधिकांश पौधे सीधे उपयोग नहीं कर सकते। दलहनी फसलों की जड़ों में विशेष जड़ गाँठें (Root Nodules) बनती हैं, जिनके भीतर राइज़ोबियम जीवाणु निवास करते हैं। ये जीवाणु वायुमंडलीय नाइट्रोजन को पौधे के लिए उपयोगी रूप में परिवर्तित करने में सहायता करते हैं। इसके बदले पौधा जीवाणुओं को कार्बोहाइड्रेट एवं ऊर्जा प्रदान करता है। इस प्रकार दोनों के बीच एक पारस्परिक लाभकारी सहजीविता स्थापित होती है।

इस प्रक्रिया के माध्यम से दलहनी फसलें प्रति हेक्टेयर पर्याप्त मात्रा में नाइट्रोजन स्थिर कर सकती हैं। इसका एक भाग फसल कटाई के बाद अवशेषों के माध्यम से मृदा में रह जाता है तथा आगामी फसल के लिए प्राकृतिक रूप से उपलब्ध हो सकता है। यही कारण है कि फसल चक्र में दलहनी फसलों को सम्मिलित करना मृदा की उर्वरता बनाए रखने की एक प्रभावी एवं प्राकृतिक विधि माना जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि प्रत्येक दलहनी फसल एवं राइज़ोबियम के बीच एक विशिष्ट अनुकूलता (Host Specificity) होती है। अर्थात, चने के लिए उपयुक्त राइज़ोबियम स्ट्रेन मूँग अथवा अरहर के लिए समान रूप से प्रभावी नहीं हो सकता। इसलिए फसल-विशेष राइज़ोबियम कल्चर का चयन एवं प्रयोग अत्यंत महत्वपूर्ण है। यदि मृदा में उपयुक्त राइज़ोबियम स्ट्रेन प्राकृतिक रूप से उपस्थित न हो अथवा उसकी संख्या अपर्याप्त हो, तो जड़ गाँठों का निर्माण कमजोर हो सकता है, नाइट्रोजन स्थिरीकरण अपर्याप्त रह सकता है तथा परिणामस्वरूप फसल की वृद्धि एवं उपज दोनों प्रभावित हो सकती हैं।

जैव उर्वरक क्या हैं?

जैव उर्वरक जीवित सूक्ष्मजीवों—जैसे जीवाणु, कवक अथवा शैवाल—से निर्मित उत्पाद हैं, जिन्हें बीज, जड़ अथवा मृदा में प्रयोग करने पर वे पौधों के लिए पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाने में सहायता करते हैं। ये रासायनिक उर्वरकों से भिन्न होते हैं, क्योंकि इनका प्रमुख कार्य सीधे पोषक तत्व उपलब्ध कराने के बजाय मृदा में उपस्थित अथवा वायुमंडलीय पोषक तत्वों को पौधों के लिए उपलब्ध कराने वाली प्राकृतिक प्रक्रियाओं को सक्रिय एवं सुदृढ़ करना है।

चित्र 1: दलहनी फसलों हेतु प्रमुख जैव-उर्वरक

दलहनी फसलों के लिए राइज़ोबियम सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं व्यापक रूप से उपयोग किया जाने वाला जैव उर्वरक है। इसके अतिरिक्त फॉस्फोरस घुलनशील जीवाणु (PSB), पोटाश घुलनशील जीवाणु (KMB), वृद्धि प्रवर्तक जीवाणु (PGPR), माइकोराइज़ा कवक तथा ट्राइकोडर्मा जैसे जैव-आधारित सूक्ष्मजीवी उत्पाद भी दलहनी फसलों की समग्र वृद्धि, पोषण एवं रोग प्रतिरोधकता में सहायक होते हैं।

प्रमुख जैव उर्वरकों की भूमिका

दलहनी फसलों में प्रयोग किए जाने वाले प्रमुख जैव उर्वरकों की भूमिका एवं कार्यविधि को निम्न तालिका में संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है:

जैव उर्वरक	मुख्य कार्य	दलहन हेतु लाभ
राइज़ोबियम	जड़ गाँठों में वायुमंडलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण	प्राकृतिक नाइट्रोजन आपूर्ति एवं यूरिया की आवश्यकता में कमी
PSB	मृदा में स्थिर फॉस्फोरस को घुलनशील एवं पौधों के लिए उपलब्ध बनाना	जड़ विकास एवं गाँठ निर्माण में सुधार
PGPR	वृद्धि हार्मोन एवं एन्ज़ाइमों का स्राव	समग्र पौध वृद्धि एवं तनाव सहनशीलता में सुधार
माइकोराइज़ा	जड़ों के साथ सहजीवी	फॉस्फोरस एवं सूक्ष्म

(VAM)	संबंध स्थापित कर जल एवं पोषक तत्वों के अवशोषण में वृद्धि	पोषक तत्वों के अवशोषण में सुधार
KMB	मृदा में स्थिर पोटैशियम को घुलनशील एवं पौधों के लिए उपलब्ध बनाना	पौध सुदृढ़ता एवं रोग प्रतिरोधकता में सुधार
ट्राइकोडर्मा	मृदा-जनित रोगजनकों का जैविक नियंत्रण	जड़ सड़न एवं उकठा रोग से सुरक्षा

दलहन उत्पादन एवं मृदा स्वास्थ्य पर लाभ

जैव उर्वरकों का प्रयोग दलहनी फसलों की उत्पादकता के साथ-साथ मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। इसके प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं—

- रासायनिक नाइट्रोजन उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है, जिससे उत्पादन लागत में उल्लेखनीय कमी आती है।
- मृदा में जैविक नाइट्रोजन का प्राकृतिक संचयन होता है, जिसका लाभ आगामी फसल को भी प्राप्त होता है।
- जड़ों का बेहतर विकास होने से पौधे जल एवं पोषक तत्वों का अधिक प्रभावी ढंग से अवशोषण कर पाते हैं।
- बीज अंकुरण दर एवं प्रारंभिक पौध वृद्धि में सुधार होता है।
- मृदा की सूक्ष्मजैविक गतिविधि एवं जैविक कार्बन में वृद्धि होती है।
- रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक उपयोग से होने वाले पर्यावरणीय प्रदूषण में कमी आती है।

इन लाभों में सबसे अधिक दूरगामी प्रभाव मृदा में नाइट्रोजन के प्राकृतिक संचयन का है, जिसे 'अवशिष्ट प्रभाव' (Residual Effect) कहा जाता है। दलहनी फसल की कटाई के पश्चात उसकी जड़ों एवं गाँठों में स्थिर नाइट्रोजन का एक भाग मृदा में रह जाता है, जो बिना किसी अतिरिक्त लागत के अगली फसल, विशेषकर अनाज वाली फसलों, के लिए स्वाभाविक रूप से उपलब्ध हो सकता है। यही कारण है कि परंपरागत फसल-चक्र प्रणालियों में दलहन–अनाज का क्रम वैज्ञानिक रूप से अत्यंत उपयोगी माना जाता है। जैव उर्वरकों का प्रयोग इस प्राकृतिक चक्र को और अधिक प्रभावी बनाने में सहायक होता है।

जैव उर्वरकों के प्रयोग की विधि

जैव उर्वरकों से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए उनका उचित एवं वैज्ञानिक तरीके से प्रयोग करना अत्यंत आवश्यक है। इनका सबसे सामान्य एवं प्रभावी प्रयोग 'बीज उपचार' (Seed Treatment) के माध्यम से किया जाता है। इसमें बुवाई से पूर्व बीजों पर जैव उर्वरक का समान रूप से लेप किया जाता है। इसके लिए राइज़ोबियम एवं PSB कल्चर को गुड़ अथवा चीनी के हल्के घोल में मिलाकर बीजों पर समान रूप से लगाया जाता है। उपचारित बीजों को छाया में सुखाने के बाद शीघ्र बुवाई की जाती है, ताकि जैव उर्वरक में उपस्थित जीवाणु सूर्य की सीधी रोशनी के संपर्क में आकर प्रभावित न हों।

इसके अतिरिक्त, जैव उर्वरकों को सीधे मृदा में प्रयोग करने अथवा गोबर की खाद के साथ मिलाकर उपयोग करने की विधि भी अपनाई जाती है, विशेषकर तब जब मृदा में राइज़ोबियम की प्राकृतिक उपस्थिति कम हो।

यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि जैव उर्वरकों को रासायनिक बीजोपचार, जैसे फफूंदनाशकों, के साथ प्रयोग करते समय सावधानी बरतनी चाहिए, क्योंकि कुछ रसायन जैव उर्वरकों में उपस्थित जीवाणुओं की जीवनक्षमता को प्रभावित कर सकते हैं। अतः यदि दोनों का प्रयोग करना हो, तो पहले फफूंदनाशक से बीज उपचार तथा उसके कुछ समय बाद जैव उर्वरक से उपचार करने की सलाह दी जाती है।

चुनौतियाँ एवं समाधान

जैव उर्वरकों के व्यापक एवं प्रभावी उपयोग में कुछ व्यावहारिक चुनौतियाँ मौजूद हैं। इन चुनौतियों के प्रमुख कारण एवं संभावित समाधान निम्न तालिका में प्रस्तुत किए गए हैं:

चुनौती	कारण	समाधान
सीमित भंडारण अवधि	जीवित सूक्ष्मजीव तापमान के प्रति संवेदनशील होते हैं	ठंडे एवं छायादार स्थान पर भंडारण तथा निर्धारित समयावधि के भीतर उपयोग
गुणवत्ता में असंगति	उत्पादन एवं भंडारण मानकों का अभाव	प्रमाणित एवं विश्वसनीय स्रोत से जैव उर्वरक खरीदना
जागरूकता की कमी	सही प्रयोग विधि की पर्याप्त जानकारी का अभाव	कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से प्रशिक्षण एवं प्रदर्शन
रसायनों से असंगति	कुछ फफूंदनाशक जीवाणुओं की जीवनक्षमता को प्रभावित कर सकते हैं	उपचार के क्रम एवं समयांतराल का ध्यान रखना

भारतीय परिप्रेक्ष्य

भारत दलहनी फसलों के उत्पादन एवं उपभोग—दोनों में विश्व के प्रमुख देशों में शामिल है। इसलिए भारतीय कृषि में जैव उर्वरकों की

भूमिका विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाती है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) एवं राज्य कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा फसल-विशेष एवं क्षेत्र-विशेष राइज़ोबियम स्ट्रेन विकसित किए जा रहे हैं, जो विभिन्न दलहनी फसलों एवं मृदा परिस्थितियों के लिए प्रभावी हो सकते हैं। राष्ट्रीय जैव उर्वरक उत्पादन इकाइयों एवं कृषि विज्ञान केन्द्रों के माध्यम से किसानों तक गुणवत्तापूर्ण जैव उर्वरक पहुँचाने के प्रयास भी किए जा रहे हैं।

यदि किसानों को गुणवत्तापूर्ण जैव उर्वरकों की सुलभ उपलब्धता, उनके सही प्रयोग की जानकारी एवं आवश्यक आर्थिक प्रोत्साहन प्राप्त हो, तो दलहन उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि के साथ-साथ रासायनिक उर्वरकों पर निर्भरता एवं उत्पादन लागत में भी कमी लाई जा सकती है। इससे न केवल किसानों की आय में सुधार होगा, बल्कि देश की दलहन आत्मनिर्भरता एवं मृदा स्वास्थ्य संरक्षण के राष्ट्रीय लक्ष्यों को भी सुदृढ़ किया जा सकेगा।

इसके साथ ही, कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा फसल-विशेष एवं मृदा-विशेष राइज़ोबियम कल्चर की सिफारिश करना तथा किसानों को स्थानीय भाषा में बीज उपचार की व्यावहारिक जानकारी एवं प्रशिक्षण देना इस तकनीक के प्रसार में विशेष रूप से सहायक हो सकता है। जब किसान स्वयं अपने खेत में जैव उर्वरक उपचारित एवं अनुपचारित बीजों के बीच अंतर—जैसे जड़ गाँठों की संख्या, पौधे की वृद्धि एवं अंततः उपज—को देखते हैं, तो वे इस तकनीक को स्वेच्छा से एवं स्थायी रूप से अपनाने के लिए अधिक प्रेरित होते हैं।

निष्कर्ष

दलहनी फसलों में जैव उर्वरकों की भूमिका केवल एक तकनीकी विकल्प तक सीमित नहीं है, बल्कि यह प्रकृति में पहले से विद्यमान वैज्ञानिक एवं सहजीवी प्रक्रियाओं को सुदृढ़ करने का एक प्रभावी माध्यम है। राइज़ोबियम के माध्यम से नाइट्रोजन स्थिरीकरण तथा PSB, PGPR एवं माइकोराइज़ा जैसे अन्य जैव उर्वरकों के समन्वित उपयोग से दलहन उत्पादकता में उल्लेखनीय सुधार संभव है, वह भी अपेक्षाकृत कम रासायनिक निवेश के साथ। यह पद्धति उत्पादन लागत कम करने, मृदा स्वास्थ्य में सुधार एवं पर्यावरण संरक्षण—इन तीनों उद्देश्यों को एक साथ पूरा करने में सहायक है।

आवश्यकता इस बात की है कि किसानों को गुणवत्तापूर्ण जैव उर्वरकों की सुलभ उपलब्धता, सही प्रयोग विधि की जानकारी एवं तकनीकी सहयोग प्राप्त हो। यदि अनुसंधान संस्थान, शासन एवं कृषक समुदाय मिलकर इस दिशा में समन्वित प्रयास करें, तो जैव उर्वरक भारतीय दलहन उत्पादन को अधिक टिकाऊ, किफायती एवं आत्मनिर्भर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

वास्तव में, प्रकृति द्वारा प्रदत्त इस सहजीविता का वैज्ञानिक एवं प्रभावी उपयोग ही टिकाऊ दलहन कृषि की वास्तविक कुंजी है।

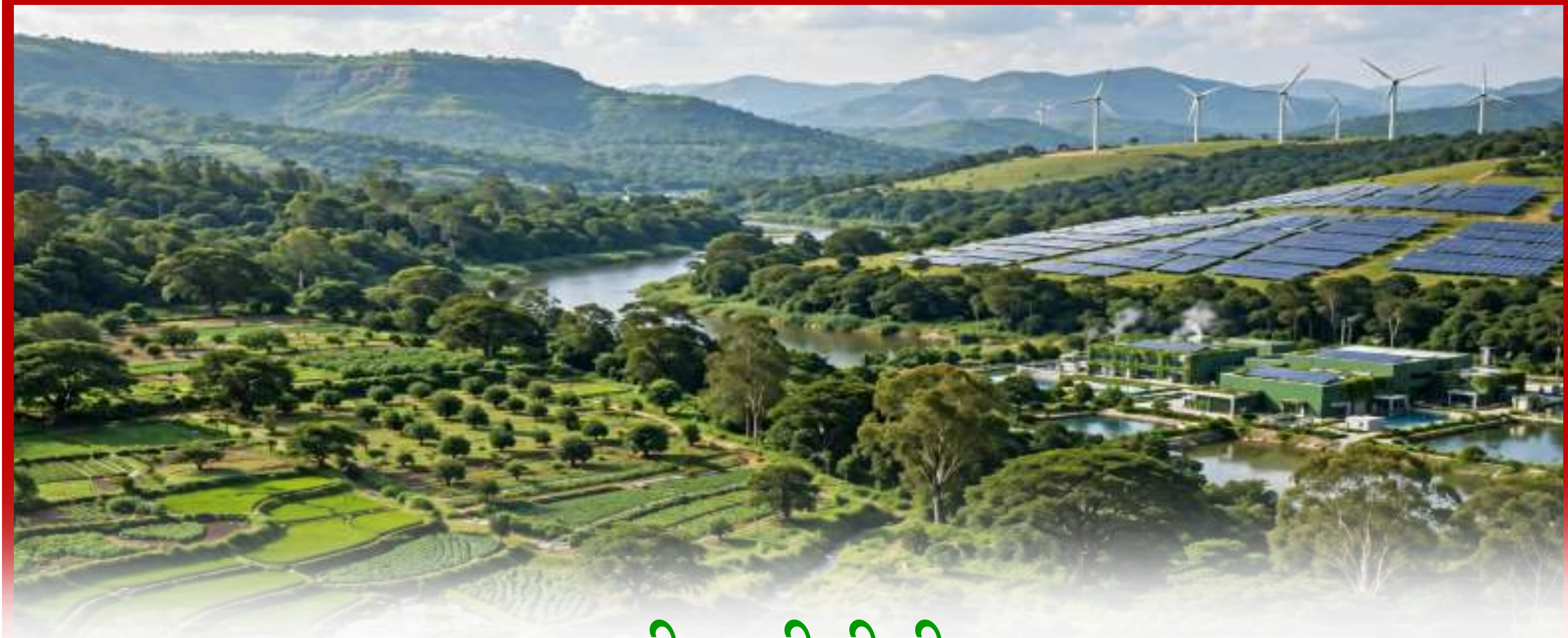

ग्रीन जीडीपी
भारत में सतत विकास और हरित अर्थव्यवस्था की दिशा में एक पहल

दीपिका वर्मा

पीएच.डी. शोधार्थी, कृषि अर्थशास्त्र विभाग

श्री कर्ण नरेंद्र कृषि विश्वविद्यालय, जोबनेर (राजस्थान)

आर्थिक विकास को लंबे समय तक किसी देश की प्रगति का प्रमुख आधार माना जाता रहा है और इसके मूल्यांकन के लिए सकल घरेलू उत्पाद का उपयोग किया जाता है। हालांकि, पारंपरिक GDP केवल बाजार में होने वाली आर्थिक गतिविधियों को मापता है और प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण, प्रदूषण तथा पर्यावरणीय क्षति को इसमें शामिल नहीं करता है। इसके परिणामस्वरूप कई बार आर्थिक वृद्धि वास्तविक विकास की सही तस्वीर प्रस्तुत नहीं कर पाती। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता में कमी, प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन और पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्याएँ वैश्विक स्तर पर गंभीर चुनौती बन चुकी हैं। ऐसी स्थिति में आर्थिक विकास के साथ पर्यावरणीय संरक्षण को संतुलित करना आवश्यक हो गया है। इसी आवश्यकता के परिणामस्वरूप ग्रीन जीडीपी (Green GDP) की अवधारणा विकसित हुई, जो आर्थिक विकास के साथ-साथ पर्यावरणीय लागतों और प्राकृतिक संसाधनों के मूल्य को भी ध्यान में रखती है।

ग्रीन जीडीपी

ग्रीन जीडीपी पारंपरिक सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का एक संशोधित रूप है, जिसमें आर्थिक गतिविधियों से होने वाली पर्यावरणीय क्षति को समायोजित किया जाता है। इसमें प्राकृतिक संसाधनों के दोहन, प्रदूषण, कार्बन उत्सर्जन तथा पारिस्थितिकी तंत्र की क्षति को ध्यान में रखते हुए किसी देश के वास्तविक आर्थिक प्रदर्शन का मूल्यांकन किया जाता है। इसे पर्यावरणीय रूप से समायोजित घरेलू उत्पाद (Environmentally Adjusted Domestic Product) भी कहा जाता है। ग्रीन जीडीपी यह दर्शाती है कि किसी देश की आर्थिक वृद्धि कितनी टिकाऊ है तथा प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग का भविष्य की पीढ़ियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

ग्रीन जीडीपी की आवश्यकता

1. **पर्यावरणीय क्षति का मूल्यांकन:** पारंपरिक GDP में केवल उत्पादन और आय से संबंधित गतिविधियों को शामिल किया जाता है, जबकि प्राकृतिक संसाधनों की हानि और पर्यावरणीय नुकसान को नजरअंदाज किया जाता है। ग्रीन जीडीपी इन पर्यावरणीय लागतों को शामिल करके आर्थिक विकास का अधिक वास्तविक मूल्यांकन करती है।
2. **सतत विकास को बढ़ावा:** ग्रीन जीडीपी सतत विकास के सिद्धांतों के अनुरूप है, जिसमें वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ भविष्य की पीढ़ियों के लिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण सुनिश्चित किया जाता है।
3. **प्रभावी नीति निर्माण:** ग्रीन जीडीपी नीति निर्माताओं को यह समझने में सहायता करती है कि आर्थिक गतिविधियों का पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ रहा है। इसके आधार पर पर्यावरण हितैषी और दीर्घकालिक नीतियाँ बनाई जा सकती हैं।

ग्रीन जीडीपी के प्रमुख घटक

- **प्राकृतिक पूंजी का मूल्यांकन:** प्राकृतिक पूंजी में भूमि, जल, वन, खनिज और अन्य प्राकृतिक संसाधन शामिल होते हैं। ग्रीन जीडीपी इन संसाधनों की उपलब्धता, उपयोग और क्षरण का आर्थिक मूल्यांकन करती है।
- **प्रदूषण एवं उत्सर्जन का मापन:** वायु, जल और मृदा प्रदूषण तथा ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन के आर्थिक प्रभावों का आकलन ग्रीन जीडीपी का महत्वपूर्ण भाग है।
- **पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का मूल्यांकन:** वन, नदियाँ और अन्य पारिस्थितिकी तंत्र जलवायु नियंत्रण, जल संरक्षण, जैव विविधता संरक्षण और मृदा संरक्षण जैसी महत्वपूर्ण सेवाएँ प्रदान करते हैं। ग्रीन जीडीपी इन सेवाओं के आर्थिक मूल्य को पहचानने का प्रयास करती है।

विश्व में ग्रीन जीडीपी की स्थिति:

- **चीन:** चीन ने वर्ष 2004 में ग्रीन GDP के आँकड़े विकसित करने की पहल की थी। हालांकि पर्यावरणीय लागतों के आकलन और पद्धति संबंधी चुनौतियों के कारण इसे व्यापक रूप से लागू नहीं किया जा सका।
- **संयुक्त राज्य अमेरिका:** अमेरिका ने पर्यावरणीय-आर्थिक लेखांकन प्रणाली विकसित की है, जिसके माध्यम से पर्यावरणीय व्यय, प्राकृतिक संसाधनों और आर्थिक गतिविधियों के संबंधों का अध्ययन किया जाता है। हालांकि वहाँ आधिकारिक रूप से ग्रीन GDP प्रकाशित नहीं की जाती।
- **यूरोपीय संघ:** यूरोपीय संघ के देशों में पर्यावरणीय लेखांकन प्रणाली को बढ़ावा दिया गया है, जिसमें उत्सर्जन, पर्यावरणीय कर, प्राकृतिक संसाधन और संरक्षण व्यय को शामिल किया जाता है।
- **स्वीडन:** स्वीडन हरित अर्थव्यवस्था और पर्यावरणीय नीतियों के क्षेत्र में अग्रणी देशों में शामिल है। वहाँ प्राकृतिक पूंजी और पर्यावरणीय प्रदर्शन को मापने के लिए विभिन्न संकेतकों का उपयोग किया जाता है।
- **भारत:** भारत में अभी तक ग्रीन GDP का आधिकारिक रूप से नियमित प्रकाशन नहीं किया जाता है, लेकिन प्राकृतिक संसाधन लेखांकन और पर्यावरणीय आर्थिक लेखांकन की दिशा में कई प्रयास किए गए हैं। भारतीय रिज़र्व बैंक सहित विभिन्न संस्थानों द्वारा ग्रीन GDP के अनुमान लगाने के प्रयास किए गए हैं।

भारत में ग्रीन जीडीपी का विकास

भारत में ग्रीन GDP की अवधारणा को विकसित करने के प्रयास धीरे-धीरे प्रारंभ हुए। वर्ष 1999-2000 में गोवा में प्राकृतिक संसाधन लेखांकन से संबंधित पहला पायलट अध्ययन किया गया। इसके बाद वर्ष 2010 में डॉ. किरीट पारिख की अध्यक्षता में तकनीकी सलाहकार समिति का गठन किया गया, जिसने पर्यावरणीय लेखांकन की दिशा में सुझाव दिए। वर्ष 2011 में प्रोफेसर पार्थ दासगुप्ता की अध्यक्षता में विशेषज्ञ समूह का गठन किया गया, जिसका उद्देश्य भारत में हरित राष्ट्रीय लेखांकन प्रणाली विकसित करना था। वर्तमान में भारत प्राकृतिक पूंजी लेखांकन और पर्यावरणीय आर्थिक लेखांकन को मजबूत करने की दिशा में कार्य कर रहा है।

ग्रीन जीडीपी का क्या महत्त्व है

1. **पर्यावरणीय मूल्यांकन:** ग्रीन GDP प्राकृतिक संसाधनों और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के आर्थिक मूल्य को शामिल करती है, जिससे विकास की वास्तविक लागत और लाभों का आकलन संभव होता है।
2. **सतत विकास:** यह आर्थिक विकास और पर्यावरणीय संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करने में सहायता करती है तथा सतत विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने में योगदान देती है।
3. **बेहतर नीति निर्माण:** ग्रीन GDP उच्च पर्यावरणीय प्रभाव वाले क्षेत्रों की पहचान करने और प्रभावी नीतियाँ बनाने में सहायता प्रदान करती है।
4. **संसाधनों का बेहतर प्रबंधन:** यह प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और कुशल उपयोग को प्रोत्साहित करती है, जिससे भविष्य में संसाधनों की उपलब्धता बनी रहती है।

ग्रीन जीडीपी के लाभ

1. प्राकृतिक संसाधनों के वास्तविक मूल्य को पहचानना।
2. आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन स्थापित करना।
3. पर्यावरणीय क्षति को कम करने वाली नीतियों को बढ़ावा देना।
4. जल, भूमि और वन जैसे संसाधनों के सतत उपयोग को प्रोत्साहित करना।
5. जलवायु परिवर्तन से निपटने में सहायता करना।

भारत में ग्रीन जीडीपी की चुनौतियाँ

- **डेटा की कमी**: प्राकृतिक संसाधनों और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं से संबंधित विश्वसनीय डेटा की कमी एक प्रमुख चुनौती है।

- **तकनीकी एवं पद्धति संबंधी समस्याएँ:** ग्रीन GDP के लिए उपयुक्त मूल्यांकन पद्धति और विशेषज्ञता का अभाव इसके कार्यान्वयन को कठिन बनाता है।
- **संस्थागत एवं नीतिगत चुनौतियाँ:** विभिन्न संस्थानों के बीच समन्वय तथा प्रभावी नीति क्रियान्वयन की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

ग्रीन जीडीपी आर्थिक विकास को पर्यावरणीय स्थिरता के साथ जोड़ने वाला एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है। यह केवल आर्थिक उत्पादन को मापने के बजाय यह भी बताती है कि उस विकास की पर्यावरणीय लागत कितनी है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन, प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण और प्रदूषण जैसी चुनौतियों को देखते हुए ग्रीन जीडीपी की आवश्यकता पहले से अधिक बढ़ गई है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है। विशेष रूप से कृषि क्षेत्र में प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और सतत कृषि पद्धतियों को बढ़ावा देने के लिए ग्रीन जीडीपी एक उपयोगी साधन सिद्ध हो सकती है। यदि भारत बेहतर डेटा प्रणाली, वैज्ञानिक मूल्यांकन पद्धतियों और प्रभावी नीतिगत प्रयासों के माध्यम से ग्रीन जीडीपी को अपनाता है, तो यह न केवल आर्थिक प्रगति का वास्तविक मूल्यांकन करने में सहायता करेगा, बल्कि सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान देगा।

♣♣♣

कृषि में भू-स्थानिक प्रौद्योगिकी: प्रगति और अनुप्रयोग

शिवम पाण्डेय
परियोजना वैज्ञानिक
रिमोट सेंसिंग एप्लीकेशन सेंटर, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, उत्तर प्रदेश

कृषि में भू-स्थानिक/भौगोलिक सूचना प्रौद्योगिकी का एकीकरण पारंपरिक खेती को वैज्ञानिक और टिकाऊ 'स्मार्ट कृषि' में बदलने वाला एक क्रांतिकारी कदम है। रिमोट सेंसिंग, जीआईएस, और जीपीएस जैसी उन्नत तकनीकों ने कृषि क्षेत्र की पुरानी और अनिश्चित पद्धतियों को डेटा-आधारित सटीक प्रणालियों में बदल दिया है। यह तकनीक न केवल उत्पादकता बढ़ाने में सहायक है, बल्कि आज के दौर की सबसे बड़ी चुनौती—जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक आपदाओं—का सामना करने के लिए किसानों को सक्षम बनाती है। कृषि क्षेत्र में मुख्य रूप से तीन तकनीकों का एक साथ उपयोग किया जाता है, **रिमोट सेंसिंग का उपयोग** उपग्रहों और ड्रोन के जरिए बिना खेत में जाए फसलों की तस्वीरें और डेटा एकत्र करना। **जीआईएस का उपयोग** एकत्रित किए गए डेटा को डिजिटल मानचित्र (Map) पर व्यवस्थित और विश्लेषित करना तथा **जीपीएस का उपयोग** खेत के किसी विशेष हिस्से की सटीक भौगोलिक स्थिति (Location) का पता लगाना।

डिजिटल कृषि: खेतों में तकनीक का व्यावहारिक क्रियान्वयन

1. **सटीक खेती (Precision Farming):** इस तकनीक से खेत के किस हिस्से को कितने पानी, खाद या कीटनाशक की आवश्यकता है, इसकी सटीक जानकारी मिलती है। इससे संसाधनों की बर्बादी रुकती है और उत्पादन लागत कम होती है। पारंपरिक खेती में पूरे खेत को एक समान माना जाता है, लेकिन भू-स्थानिक तकनीक यह मानती है कि एक ही खेत के अलग-अलग हिस्सों में मिट्टी और फसल की स्थिति अलग हो सकती है। **सटीक प्रबंधन जैसे** GPS और सेंसर से लैस ट्रैक्टर और मशीनें खेत के केवल उसी हिस्से में खाद या पानी देती हैं जहाँ उसकी कमी होती है। **परिवर्तनीय दर तकनीक** (VRT), इसके माध्यम से जरूरत के अनुसार रसायनों की मात्रा को ऑटोमैटिकली कम या ज्यादा किया जाता है, जिससे इनपुट लागत में भारी कमी आती है।
2. **फसल स्वास्थ्य की निगरानी (Crop Health Monitoring):** रिमोट सेंसिंग के जरिए फसलों में लगने वाले रोगों, कीटों के प्रभाव और पोषण की कमी को शुरुआती चरणों में ही पहचाना जा सकता है। सैटेलाइट और ड्रोन में लगे विशेष कैमरे (Multispectral Cameras) इंसानी आँखों से पहले फसलों की बीमारी पकड़ लेते हैं। NDVI (नॉर्मलाइज्ड डिफरेंस वेजीटेशन इंडेक्स): यह तकनीक पौधों द्वारा परावर्तित होने वाले प्रकाश का विश्लेषण करती है। स्वस्थ पौधे अलग तरह का प्रकाश छोड़ते हैं और तनावग्रस्त (बीमार/सूखे) पौधे अलग। शुरुआती चेतावनी: किसान को फसल में कीड़े या बीमारी बड़े पैमाने पर फैलने से पहले ही पता चल जाता है, जिससे वे केवल प्रभावित हिस्से पर कीटनाशक छिड़क कर फसल बचा लेते हैं।
3. **मृदा और नमी का मानचित्रण (Soil & Moisture Mapping)**: मिट्टी के प्रकार, उसकी उर्वरता और नमी के स्तर का डिजिटल नक्शा तैयार किया जाता है, जिससे सही फसल चुनने और सिंचाई प्रबंधन में

मदद मिलती है। मिट्टी की सेहत ही अच्छी फसल का आधार है। जीआईएस (GIS) तकनीक इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। **डिजिटल सॉइल मैप**, खेत के अलग-अलग हिस्सों से मिट्टी के नमूने लेकर उनकी जीपीएस लोकेशन नोट की जाती है। प्रयोगशाला की रिपोर्ट को जीआईएस सॉफ्टवेयर में डालकर पूरे खेत का एक पोषण मानचित्र तैयार होता है। **उर्वरक की सही मात्रा**, यह मानचित्र किसान को साफ दिखाता है कि खेत के किस कोने में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस या पोटैशियम की कमी है, जिससे उर्वरक का संतुलित उपयोग संभव होता है।

4. **फसल उत्पादन का पूर्वानुमान (Yield Estimation):** मौसम के डेटा और उपग्रह इमेजरी के विश्लेषण से कटाई से पहले ही फसल के कुल उत्पादन का अनुमान लगाया जा सकता है, जो सरकारी नीतियों और बाजार प्रबंधन के लिए उपयोगी है। यह अनुप्रयोग व्यक्तिगत किसान के साथ-साथ सरकार और बाजार के लिए भी बहुत जरूरी है। **फसल की पहचान करने के लिए** सैटेलाइट इमेजरी के जरिए अंतरिक्ष से ही यह पहचान लिया जाता है कि किस क्षेत्र में कौन सी फसल (जैसे- गेहूं, धान, या गन्ना) उगाई गई है। **उत्पादन का अनुमान जानने के लिए** ऐतिहासिक डेटा, मौसम के मिजाज और फसल के मौजूदा स्वास्थ्य का विश्लेषण करके कटाई से हफ्तों पहले सटीक अनुमान लगाया जाता है कि इस बार कुल कितना उत्पादन होगा। इससे सरकार को आयात-निर्यात नीतियां बनाने में मदद मिलती है।

5. **आपदा और जोखिम प्रबंधन (Disaster Management):** बाढ़, सूखा या ओलावृष्टि जैसी प्राकृतिक आपदाओं के कारण फसलों को हुए नुकसान का सटीक आकलन करने में यह तकनीक बेहद प्रभावी है, जिससे फसल बीमा दावों का निपटारा तेजी से होता है। प्राकृतिक आपदाओं के समय यह तकनीक किसानों के लिए सुरक्षा कवच का काम करती है। नुकसान का तत्काल आकलन करने के लिए बाढ़, सूखा या ओलावृष्टि के तुरंत बाद ड्रोन या सैटेलाइट से प्रभावित क्षेत्र की तस्वीरें ली जाती हैं। तथा विवाद मुक्त क्लेम हेतु इससे बीमा कंपनियों और किसानों के बीच नुकसान के आकलन को लेकर होने वाले विवाद खत्म होते हैं और पीड़ित किसानों को सीधे उनके बैंक खाते में जल्दी मुआवजा मिल जाता है।

कृषि का भविष्य: जियोस्पेशियल टेक्नोलॉजी

इसके प्रमुख लाभों को देखते हुए यह स्पष्ट है कि इस तकनीक का भविष्य बेहद उज्ज्वल है। इसके माध्यम से संसाधनों जैसे पानी, खाद और कीटनाशकों का केवल आवश्यकतानुसार उपयोग (Precision Farming) सुनिश्चित होता है। इससे जहाँ एक ओर किसानों की इनपुट लागत में भारी कमी आती है और उनका मुनाफा बढ़ता है, वहीं दूसरी ओर रसायनों के अनियंत्रित उपयोग पर रोक लगने से मिट्टी की सेहत सुधरती है और पर्यावरण का संरक्षण होता है। इसके अतिरिक्त, फसल बीमा और सरकारी योजनाओं में इसके उपयोग ने भ्रष्टाचार को कम कर पारदर्शिता और गति को बढ़ावा दिया है।

हालाँकि, भारत जैसे विकासशील देश में इस तकनीक की पूरी क्षमता का लाभ उठाने के लिए कुछ बाधाओं को पार करना होगा। वर्तमान में महंगे उपकरण, तकनीकी कौशल की कमी और छोटे भूखंड इसके बड़े पैमाने पर अपनाने में मुख्य चुनौतियाँ हैं।

अंतिम निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि भू-स्थानिक प्रौद्योगिकी केवल एक आधुनिक तकनीकी उपकरण नहीं, बल्कि वैश्विक खाद्य सुरक्षा (Food Security) सुनिश्चित करने का एक सशक्त माध्यम है। यदि सरकारें डिजिटल कृषि मिशन के तहत इन तकनीकों को सुलभ और किफायती बनाकर छोटे व सीमांत किसानों तक पहुँचाने में सफल रहती हैं, तो यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था के कायाकल्प और कृषि को एक लाभदायक व्यवसाय बनाने में मील का पत्थर साबित होगी।

कृषक मंच - अक्टूबर 2026 संस्करण

लोकप्रिय लेखों के लिए आमंत्रण

वेबसाइट: krishakmanch.com

अंतिम तिथि: 28 अक्टूबर 2026

लेख के विषय:

- कृषि विज्ञान के प्रमुख क्षेत्र: एग्रोनॉमी, बागवानी, कीट विज्ञान, रोग विज्ञान, कृषि प्रसार, कृषि अर्थशास्त्र, जैव प्रौद्योगिकी आदि।
- नवीनतम कृषि तकनीकें।
- फसल प्रबंधन एवं रोग नियंत्रण।
- जैविक खेती एवं प्राकृतिक कृषि।
- जल संरक्षण व सिंचाई तकनीकें।
- सरकारी योजनाएं।

हमारे व्हाट्सएप समूह से जुड़ें: